॥ ओ३म् ॥

उपनिषदों का सन्देश

प्रथम दिन

**ओं त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधाते सुम्नमीमहे ।**

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

आओ एक बार मिलकर उस पतितपावनी गायत्री का जिसे महर्षि दयानन्द ने महामन्त्र कहा, उच्चारण कर लें। (और सब के साथ उन्होंने उच्चारण किया—)

**ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि ।
धियो यो नः प्रचोदयात् ॥**

(और तब बोले—)

इस समय मनुष्य के समक्ष कई एक समस्याएँ हैं। कई उलझनों में यह उलझ गया है। मनुष्य स्वयं एक समस्या है। और यह संसार एक समस्या ही नहीं, एक रहस्य भी है। भूख की उलझन ही सुलझ नहीं पाई। राष्ट्रों के संघर्ष की समस्या, विभिन्न दलों की समस्या। तूफानों और अन्न की समस्या। रोग और मृत्यु की समस्या तो अभी तक हल नहीं हुई। फिर आज तक यह पता नहीं कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है। केवल शरीर ही म[illegible] आत्मा भी समाप्त हो जाता है। यदि रहता है तो कहां [illegible] है ? जो भी जाता है न पत्र लिखता है न तार भेजता है [illegible] ऐसा पर्दा गिरता है कि उस एक्टर का कुछ भी पता नहीं [illegible]

कहते हैं विज्ञान ने कितने ही आश्चर्यजनक आविष्कार कर लिये हैं। परन्तु विज्ञान भी अभी तक माया में ही उलझा पड़ा है और मनुष्य की एक भी समस्या को सुलझा नहीं पाया। आजकल का विज्ञान केवल भौतिक है। जड़ के ही कीचड़ में फंसा पड़ा है। और मनुष्य केवल जड़ नहीं, केवल पत्थर का टुकड़ा नहीं। इस में एक ...ड़ दो आत्माओं का निवास है। एक समस्त संसार को चलाने ...ा परमात्मा और दूसरा इस शरीर का अधिष्ठाता जीवात्मा। ये दोनों ही आत्मा चेतन हैं। इसलिए जब तक माया और आत्मा दोनों की सम्मिलित खोज न होगी तब तक विज्ञान अधूरा और असफल रहेगा। केवल प्रकृति या माया का ज्ञान उलझनें बढ़ा तो दे ... सुलझा एक भी नहीं सकेगा। कहीं इतनी वर्षा होती है कि विनाश जाग उठता है, कहीं वर्षा न होने से विनाश का भूत नाचने लगता ...। कहीं कहीं इतना सूखा कि मनुष्य पानी की बूँद को तरसने लगे ...ग्नी कि ग्राम के ग्राम, खेतों के खेत डूब जायें अर्थात् इन ...र भी विज्ञान का अधिकार नहीं।

और फिर जहाँ ये समस्यायें नहीं वहाँ विज्ञान के सुन्दर आविष्कारों के होते हुये भी मनुष्य दुःखी है। एक क्षण के लिए भी उसे सुख नहीं। कहीं भय है, कहीं घृणा, कहीं युद्ध की तैयारियाँ है, कहीं भयंकर शस्त्रों के आविष्कार। ऐसा प्रतीत होता है कि जिस विज्ञान को मनुष्य ने रक्षा के लिए अपना सहायक बनाया था वही उसे ...ी ओर ले जाता है। कोई भी समस्या उस से सुलझ नहीं ...ा नई समस्या को उत्पन्न अवश्य कर देता है। क्यों नहीं ...स्या ? क्यों नहीं मनुष्य को सुख मिलता ? इसलिए कि ... अधूरा है, केवल जड़ पदाथ के पीछे लगा है। इस प्रकृति ...नविक शक्ति को उसने समझा नहीं फिर ये सारी उलझनें कैसे खुलेंगें ? उत्तर यह है कि जब प्रकृति और आत्मा ...ाथ रख कर खोज होगी। इसी को अध्यात्मज्ञान या

आत्मज्ञान कहते हैं।

मेरी धारणा यह है कि अध्यात्मवाद में निश्चित रूपेण लौकिक और पारलौकिक सभी प्रकार की उलझनों के समाधान की पूर्ण शक्ति विद्यमान है। चोरी को, भ्रष्टाचार को, अनाचार, अत्याचार और व्यभिचार को अध्यात्मवाद ही दूर कर सकता है कोई राजनैतिक दल या शक्तिशाली राज्य प्रणाली भी दूर नहीं कर सकती। उपनिषद् काल में जब अध्यात्मवाद का प्रचार था तब लोगों के चरित्र बहुत ऊँचे थे। आपको एक कथा सुनाता हूँ।

विदुर जी महाराज आज से लगभग ५ सहस्र वर्ष पूर्व संसार भर में घूम कर स्यात् इसी देहली में महाराज धृतराष्ट्र के पास पहुँचे तो महाराज ने कहा, "विदुर जी ! सारा संसार घूम कर आये हैं आप, कहिये कहाँ कहाँ पर क्या देखा आपने ?"

विदुर जी बोले, "राजन् कितनी आश्चर्य की बात देखी है मैंने सारा संसार लोभ की शृंखलाओं में फंस गया है। लोभ, क्रोध, भय के कारण उसे कुछ भी नहीं दिखाई देता, पागल हो गया है। आत्मा को वह जानता नहीं।

तब एक कथा उन्होंने सुनाई। एक वन था बहुत भयानक उसमें भूला भटका हुआ एक व्यक्ति जा पहुँचा। मार्ग उसे मिला नहीं। किन्तु उसने देखा कि वन में शेर, चीते, रीछ, हाथी और कितने ही पशु दहाड़ रहे हैं। भय से उसके हाथ पाँव काँपने लगे। बिना देखे वह भागने लगा। भागता भागता एक स्थान पर पहुँच गया। वहाँ देखा कि पाँच विषधर सर्प फन उठाये फुंकार रहे हैं। उनके पास ही एक वृद्ध स्त्री खड़ी है, महान् भयंकर। सांप इसकी ओर लपका तो वह फिर भागा और अन्त में हांफता हुआ एक गढ़े में जा गिरा जो घास और वृक्षों से ढका पड़ा था। सौभाग्य से एक बड़े वृक्ष की शाखा उसके हाथ में आ गई। उसको पकड़ कर वह लटकने लगा। अभी उसने नीचे देखा कि एक कुआं है और उसमें एक बहुत बड़ा

सर्प-एक अजगर मुख खोले बैठा है। उसे देखकर वह काँप उठा। शाख को दृढ़ता से पकड़ लिया कि गिर कर अजगर के मुख में न जा पड़े। परन्तु ऊपर देखा तो उससे भी भयंकर दृश्य था। छः मुख वाला एक हाथी वृक्ष को झंझोड़ रहा था और जिस शाखा को उसने पकड़ रक्खा था उसे श्वेत और काले रंग के चूहे काट रहे थे। भय से उसका रंग पीला पड़ गया परन्तु तभी मधु की एक बूँद उसके होठों पर आ गिरी। उसने ऊपर देखा। वृक्ष के ऊपर वाले भाग में मधु मक्खियों का एक छत्ता लगा था उसी से शनैः शनैः शहद की बूँदें गिरती थीं। इन बूँदों का स्वाद वह लेने लगा। इस बात को भूल गया कि नीचे अजगर है। इस बात को भूल गया कि वृक्ष को एक छः मुख वाला हाथी झंझोड़ रहा है। इस बात को भी भूल गया कि जिस शाख से वह लटका है उसे श्वेत और काले चूहे काट रहे हैं और इस बात को भी कि चारों ओर भयानक वन है उसमें भयंकर पशु चिंघाड़ रहे हैं।

धृतराष्ट्र ने कथा को सुना तो कहा, "विदुर जी! यह कौन से वन की बात आप कहते हैं? कौन है यह अभागा व्यक्ति जो इस भयानक वन में पहुँच कर संकट में फंस गया?"

विदुर जी ने कहा, "राजन्! यह संसार ही वह वन है। मनुष्य ही वह अभागा व्यक्ति है। संसार में पहुँचते ही वह देखता है कि इस वन में, रोग, कष्ट और चिन्तारूपी पशु गर्ज रहे हैं। यही काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के पाँच विषधर सर्प फन फैलाये फुंकार रहे हैं। यहीं वह बूढ़ी स्त्री रहती है जिसे वृद्धावस्था कहते हैं और जो रूप तथा यौवन को समाप्त कर देती है। इन से डर कर वह भागा। वह शाखा जिसे जीने की इच्छा कहते हैं हाथ में आ गई। इस शाखा से लटके लटके उसने देखा कि नीचे मृत्यु का महासर्प मुँह खोले बैठा है। वह सर्प जिससे आज तक कोई भी नहीं बचा, न राम न रावण, न कोई राजा न महाराजा, न कोई धनवान् न कोई निर्धन, न मज-

दूर न पूंजीपति—कोई भी काल रूपी सर्प से आज तक बचा नहीं और छः मुख वाला हाथी जो इस वृक्ष को झंझोड़ रहा था वह वर्ष है छः ऋतु वाला। छः ऋतु ही उसके मुख हैं। लगातार वह इस वृक्ष को झंझोड़ता रहता है। और इसके साथ ही काले और श्वेत रंग के चूहे इस शाख को तीव्रता से कुरेदते हैं ये रात और दिन प्रति दिन छोटा किये देते हैं।

जेरे गर्दू उम्र अपनी दिन बदिन कटती गई।
जिस कदर बढ़ते गये हम जिन्दगी घटती गई॥

हम समझते हैं कि हम बड़े हो गये हैं। अरे भाई! प्रतिदिन हम बड़े नहीं होते, घटते चले जाते हैं।

गाफिल तुझे घड़ियाल यह देता है मुनादी।
गर्दू ने घड़ी उम्र की इक और घटा दी॥

और यह शहद की बून्द जो टपक रही थी वह है आशा और तृष्णा, जीने की आशा। "जीता रहूँ पीता रहूँ" यह आशा है। इस अवस्था में लटक रहा है मनुष्य। कभी कभी नीचे के सर्प और ऊपर के हाथी और चूहों को देख कर घबराता भी है। कवि के शब्दों में उसकी अवस्था यह है कि—

हर दम है तबियत को उलझन इक यास का आलम तारी है।
यह सांस नहीं एक कांटा है, यह जीवन नहीं बीमारी है॥

यही क्या जीवन है? यही जीवन है तो मृत्यु किसको कहेंगे? हर समय मृत्यु का भय सामने है। जीवन रूपी शाखा कटती जाती है निरन्तर, और वन में दहाड़ रहे हैं पशु। ऐसे व्यक्ति के लिए सुख कहाँ, शान्ति कहाँ?

बालाये आसमां नहीं, जेरे जमीं नहीं।
राहत है जिस का नाम वह ऐ दिल कहीं नहीं॥

यदि है तो बता दो। शान्ति और सन्तोष कहीं दिखाई नहीं देता। ऐसी अवस्था में मनुष्य पुकारता है, पूछता है कि मेरे बचाव का

मार्ग है या नहीं ? उत्तर है कि मार्ग है। कौन सा मार्ग है ? और किस प्रकार मनुष्य विवश होकर पुकारता है उसे शंकराचार्य के शब्दों में सुनिये—

कथं तरेयं भवसिन्धुमेतं, का वा गतिर्मे कतमोऽस्त्युपायः।
जाने न किञ्चित्कृपयाव मां भोः, संसार दुःखक्षतिमातनुष्ठ ॥
(वि० चू०)

मैं इस संसार समुद्र को कैसे तरूँगा ? मेरी क्या गति होगी ? क्या इसका कोई उपाय है ? मैं तो जानता नहीं। प्रभु तू ही मार्ग बता कि संसार के दुःखों से कैसे बच सकूँगा।

यह है उसकी पुकार—यह पुकार उस भयानक जंगल में गूंजी तो आवाज आई—

मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्ति नाशः, संसारसिन्धोस्तरणेऽस्त्युपायः।
येनैव याता यतयोऽस्य पारं, तमेव मार्गं तव निर्दिशामि ॥

अरे ओ दुःखी मनुष्य ! विनाश से भयभीत न हो। तेरा विनाश नहीं होगा। संसार सागर से पार जाने का उपाय है। जिस मार्ग को अपना कर यति लोग, योगी, सन्त और महात्मा लोग इस समुद्र से पार गये वही मार्ग तुझे दिखाता हूँ।

जब यह ध्वनि उसने सुनी तो चारों ओर आश्चर्य से देखा। आश्चर्य के साथ उसने सोचा क्या वस्तुतः कोई मार्ग है ?

निश्चित रूपेण ऐसा मार्ग है। उपनिषद् उसे अध्यात्मवाद कहता है। स्मरण रखिये कि इसके अतिरिक्त दूसरा कोई मार्ग नहीं। कुछ बालक-बुद्धि लोग कहेंगे कि आनन्द स्वामी यह तू क्या कहता है ? क्या तेरा अध्यात्मवाद संसार की सभी समस्याओं को हल कर सकता है ? क्या वह अन्न की कमी को पूर्ण कर सकता है ? इन शक्तियों को जो एक दूसरे का विनाश करने के लिये तुली बैठी हैं रोक सकता है ? क्या इन गृद्धों को समाप्त कर सकता है जो हमारे देश की

सीमाओं पर इस प्रतीक्षा में बैठे हैं कि कब यह विशाल भारत दुर्बल हो और कब उसे नोच-नोच कर खायें ? क्या वह आर्थिक समस्याओं को, मजदूर और पूंजीपति की समस्या को हल कर सकता है ? यदि नहीं कर सकता तो फिर यह संसार सागर से पार कैसे ले जा सकता है ?

ऐसे भाइयों को, ऐसी बहनों और माताओं को मैं दावे के साथ कहता हूँ कि हाँ उपनिषद् का अध्यात्मवाद यह सब कुछ समाप्त कर सकता है। जो लोग यह समझते हैं कि वह ऐसा नहीं कर सकता वे यही नहीं समझ पाये कि अध्यात्मवाद है क्या ?

यह बात मैं अपने हृदय पर हाथ रख कर कहता हूँ और उस इतिहास के आधार पर कहता हूँ जो आज भी विद्यमान है। भारत में महाराजा अश्वपति उस समय राज्य कर रहे थे। एक बहुत बड़ा वैश्वानर यज्ञ उनकी राजधानी में होने वाला था, पाँच महानुभाव ब्रह्मज्ञान की खोज में राजा अश्वपति के पास पहुँचे। राजा ने उन्हें कहा कि आपको भी उतना ही धन मिलेगा, जितना दूसरे ऋषियों को मिलेगा। परन्तु ब्राह्मण ने धन लेने से इन्कार किया। तब महाराज अश्वपति ने सोचा होगा कि इस अस्वीकृति का कारण यह हो सकता है कि उन्होंने समझा होगा कि मैं राजा हूँ। हर प्रकार का धन मेरे कोष में आता है। इसलिये ये ब्राह्मण और महात्मा मेरा दान नहीं लेते। इन्हें सन्देह है कि यह धन अच्छे लोगों का कमाया हुआ नहीं। तभी आगे बढ़ कर पूरे विश्वास के साथ उन्होंने कहा—सुनिये महात्मा गण !

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः ।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः ।।

हे विद्वान् ब्राह्मणो ! मेरे इस देश में कोई भी चोर नहीं, दूसरे के धन को छीनने वाला नहीं। यहां कोई कंजूस नहीं। ऐसा व्यक्ति नहीं जो दान न देता हो, कोई ऐसा नहीं जो शराब पीता हो। ऐसा

भी नहीं जो प्रतिदिन यज्ञ न करता हो। कोई मूर्ख, अनपढ़ या अविद्वान् भी नहीं। सब लोग विद्वान् हैं। यहां कोई पुरुष व्यभिचारी नहीं तब व्यभिचारिणी स्त्री कैसे हो सकती है।

यह घोषणा है जो अध्यात्मवाद के मार्ग पर चलने वाला और दूसरों को इस मार्ग पर चलाने वाला ही कर सकता है। संसार में अन्य राजा, महाराजा और शासक भी तो हुए हैं। आज भी विद्यमान हैं क्या उन में से कोई भी ऐसी घोषणा करने का साहस कर सकता है। क्या वह अपने हृदय पर हाथ रख कर कह सकता है कि मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कोई डाकू नहीं, शराबी, कंजूस या अनपढ़ नहीं। बहुत बड़े राज्य हैं आज। बड़े विधान विज्ञान के आविष्कार भी बहुत हैं परन्तु क्या कोई ऐसा राष्ट्र भी है जहाँ कोई व्यक्ति दुराचारी न हो। बहुत से 'वाद' आज संसार में विद्यमान हैं—साम्यवाद, पूंजीवाद, गणतन्त्रवाद, राज्यवाद, या किसी भी वाद को मानने वाले, किसी देश का मुखिया क्या ऐसी बात कह सकता है ? क्या यह घोषणा कर सकता है कि हमारे देश में कोई भी बुरा मनुष्य नहीं। ऐसी घोषणा केवल महाराज अश्वपति ही कर सकता था। जो अध्यात्मवाद के रहस्य को समझता था। स्वयं इस मार्ग पर चलता था, दूसरों को चलाता था। यह कथा छान्दोग्य उपनिषद् में आती है।

और वेद भगवान् के अनुसार लिखे गये सभी उपनिषदु इसी अध्यात्मवाद का प्रचार करते हैं। मैंने इस बार उपनिषदों को अपनी कथा का विषय बनाया तो इसलिये कि 'अध्यात्मवाद' का वह सुन्दर स्वरूप आपके समक्ष रख सकूँ जो इनमें मिलता है। मैंने देखा कि आज संसार के जितने रोग हैं उन्हें दूर करने की यदि कोई ओषधि है तो वह अध्यात्मवाद है। श्वेताश्वतर उपनिषद् का ऋषि घोषणा करता है—

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥

जब मनुष्य इस आकाश को चमड़े की भांति लपेट सकेंगे तब आत्मा परमात्मा को जाने बिना दुःखों का अन्त भी हो सकेगा। अर्थात् जैसे आकाश को चटाई की भाँति लपेटना असम्भव है ऐसे ही आत्मा को जाने बिना दुःखों से बचना असम्भव है। दुःख भी एक नहीं, दो नहीं, सभी दुःखों की समाप्ति हो जायेगी। यह है प्रत्येक व्याधि की चिकित्सा, प्रत्येक रोग की औषधि।

दुःख तो बहुत हैं भाई। श्री गुरु नानकदेव जी ने देश-देश घूमने के पश्चात् कहा—

नानक दुःखिया सब संसार।

परन्तु इसके साथ ही उन्होंने कहा—

सो सुखिया जो नाम अधार।

वह सुखी है जिसने ईश्वर को अपना सहारा बना लिया है। रोग बताया तो साथ ही उन्होंने औषधि भी बताई।

सर्व रोग को औषध नाम।

सब रोगों की, सब दुःखों की, सब कष्टों की एक ही चिकित्सा है अध्यात्मवाद। जब कभी संसार पर संकट आया है, जब कभी दुःखों के बादल इस प्रकार उमड़े हैं कि उसे दूसरा कोई मार्ग नहीं मिला तब अध्यात्मवाद ने ही उसकी रक्षा की है।

जिस चतुर्युगी में आज हम रहते हैं इसको आरम्भ हुए अड़तीस लाख छियानवें सहस्र वर्ष हो चुके, वैसे पृथिवी को बने एक अरब सत्तानवें करोड़ वर्ष हो चुके। मैं इसकी बात नहीं करता। वर्तमान चतुर्युगी की बात करता हूँ जो इस पृथिवी की अट्ठाइसवीं चतुर्युगी है। इस चतुर्युगी में आज से बीस पच्चीस लाख वर्ष पूर्व ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ लिखे गये और जब विद्वान् ऋषियों ने देखा

कि संसार के लोग बहुत दुःखी हुए जाते हैं तो उन ब्राह्मणों तथा आरण्यक ग्रन्थों से और उनके अतिरिक्त वेद भगवान् से उद्धरण लेकर ये उपनिषद् लिखे गये जिस से लोगों को दुःख से बचने का सीधा और साफ मार्ग बताया जा सके। सब के सब आर्य उपनिषद् इन्हीं ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यक ग्रन्थों और वेद भगवान् के भाग हैं।

उन उपनिषदों की ओर आर्य जाति से बाहर पहले किसी की दृष्टि गई तो औरंगजेब के बड़े भाई और प्रभुभक्त राजकुमार दारा-शिकोह की। वह बहुत विद्वान् था। धर्म-ग्रन्थों से उसे बड़ा प्रेम था। उन्होंने कुरान शरीफ को पढ़ा, बाइबल को पढ़ा। कई अन्य धार्मिक ग्रन्थों का भी स्वाध्याय किया। इन सब पुस्तकों को वह 'अस्मानी पुस्तकें' कहता था। उसका विश्वास था कि ये सब की सब आकाश से, ईश्वर से उतरी हैं परन्तु सब को पढ़ने के पश्चात् भी उसे शान्ति नहीं मिली। मन को सन्तोष नहीं हुआ। यह आज से ३०२ वर्ष पूर्व की बात है। तब किसी ने उसे बताया कि हिन्दुओं के पास एक ऐसा ग्रन्थ है जिस से शान्ति मिलती है, सन्तोष मिलता है। यह भी ज्ञात हुआ कि उस ग्रन्थ का नाम उपनिषद् है। यह भी पता चला कि उपनिषद् को जानने वाले विद्वान् ब्राह्मण काशी में रहते हैं। काश्मीर से वह बनारस पहुँचा। वहाँ कितने ही विद्वान् ब्राह्मणों को एकत्रित करके उसने उपनिषद् सुनने आरम्भ किये। ज्यूँ ज्यूँ सुने त्यूँ त्यूँ उसके मन में एक विचित्र शान्ति उत्पन्न हुई। सुनता रहा। सुनने के पश्चात् इच्छा हुई शान्ति देने वाले इन ग्रन्थों को स्वयं पढ़ूँ, एकान्त में बैठ कर इन पर विचार करूँ। यह सोचकर उसने निर्णय किया कि "संस्कृत पढ़ूँगा"।

परन्तु ज्ञान के इस पिपासु को किसी ने संस्कृत पढ़ाना स्वीकार नहीं किया। ब्राह्मणों ने कहा, "तू म्लेच्छ है, तुझे संस्कृत कैसे पढ़ावें।" दाराशिकोह दुःखी होकर लाहौर पहुँचे। वहाँ रावी के किनारे एक वैरागी साधु रहता था। उससे मिलने गये तो साधु ने

इन्हें दुःखी देख कर पूछा, "राजकुमार आप दुःखी क्यों हैं ?" दारा शिकोह ने कहा, "बाबा मैं संस्कृत पढ़ना चाहता हूँ, कोई मुझे पढ़ाता नहीं।" बैरागी ने हँसते हुए कहा, "इतनी सी बात से दुःखी हो गये ? मैं पढ़ाऊंगा संस्कृत।" उस बैरागी से दाराशिकोह ने संस्कृत पढ़ी। उपनिषद् उस ने पहले केवल सुने थे अब उन्हें स्वयं पढ़ा। शान्ति से उन पर विचार किया तो उसकी आत्मा में एक नवीन ज्योति उत्पन्न हुई। उसने निर्णय किया कि ऐसे सुन्दर ग्रन्थों का अनुवाद फ़ारसी भाषा में होना चाहिये। यह निश्चय करके उसने स्वयं ही यह अनुवाद आरम्भ किया। सन् १६५७ से सन् १६७४ तक सत्रह वर्ष वह अनुवाद करता रहा। बावन उपनिषदों का अनुवाद उसने किया। अपने इस महान् ग्रन्थ की भूमिका में उसने लिखा—

"मैंने अध्यात्म-विद्या के बहुत से ग्रन्थ पढ़े हैं परन्तु परमात्मा की खोज की प्यास जो अथाह सागर की भाँति है, पल-पल बढ़ती ही गई। बड़ी-बड़ी सूक्ष्म समस्या और प्रश्न हृदय में उत्पन्न होते थे जिन का समाधान ईश्वरीय ज्ञान के अतिरिक्त नहीं हो सकता था। मैंने कुरान, तौरेत, अंजील, जबूर और कई अन्य ग्रन्थों को पढ़ा परन्तु इनमें ईश्वर का वर्णन केवल संकेतों में मिला। मन की प्यास नहीं बुझा सका। तब हिन्दुओं की ईश्वरीय पुस्तकों का पता लगा। मुझे ब्रह्मज्ञान की धुन लगी हुई थी। मैंने निश्चय किया कि उपनिषदों का जो ब्रह्मज्ञान का भण्डार है, फारसी में अनुवाद करूँ। हजरत नबी की एक आयत इन्हीं प्राचीन और छुपी हुई पुस्तकों के सम्बन्ध में है। उपनिषदों का अध्ययन आत्मा में शाश्वत शान्ति और आनन्द को उत्पन्न करता है।"

यह दारा शिकोह ने लिखा है। जैसे कि मैंने कहा, दाराशिकोह औरंगजेब का भाई था। औरंगजेब की बेटी जेबुन्निसा ने जब अपने चचा को इस नई मस्ती और प्रसन्नता में देखा तो एक दिन बोली, "अब्बा ! यह आपके भीतर जो मस्ती और शांति आ गई है यह कैसे

आ गई है ?" दाराशिकोह ने कहा. "उपनिदों के अध्ययन से।" जेबुन्निसा ने पूछा, "उपनिषद् क्या है ?" दाराशिकोह ने उसे बताया। प्रत्येक उपनिषद् के उपदेश को उसके समक्ष रक्खा। जेबुन्निसा कई दिन तक अपने विद्वान चचा से इस अमृतभरे ज्ञान को प्राप्त करती रही और तब उस पर ऐसा रंग चढ़ा कि संसार की वास्तविकता उसके समक्ष प्रकट हो गई।

औरंगजेब सम्राट् था। दूर दूर से लोग उसके लिये भेंट लाते थे। एक चीनी व्यापारी अपने देश से आया तो चीन का बना हुआ एक शीशा लाकर उसने औरंगजेब को भेंट किया। बादशाह ने शीशे को महल में भेज दिया कि जेबुन्निसा को आवश्यकता हो तो रख ले। जेबुन्निसा ने रख लिया शीशा। एक दिन शरद् ऋतु में वह छत पर धूप में बैठी थी कि शीशे की याद आई। दासी से बोली, "जा वह शीशा है न, जो चीन से आया था उसे ले आ।" दासी अन्दर गई शीशा उठाया। अब यह शीशा कम्बखत ऐसी वस्तु है कि जिसके हाथ में आये उसी का जी चाहता है कि पहले अपना मुख देख ले। दासी ने भी देखा अपना मुख, देखते ही शीशा उसके हाथ से छूटा, फर्श पर गिरा, और टूट गया। दासी ने यह देखा तो उसके पैर तले से भूमि निकल गई, मुख मण्डल पीला, हृदय धक धक। डरते हुये उसने सोचा, "अब मेरी खाल खिचवा दी जायेगी।" सहमी हुई खड़ी रही जेबुन्निसा ने जब देखा कि बहुत देर हो गई तो पुकार के दासी को आवाज दी, बोली, "अरे भाई ! तुझे शीशा लाने को कहा था न।" दासी डरी हुई और सहमी हुई उसके पास आई कांपती वाणी में बोली—

अज़ कज़ा आइनाये चीनी शिकस्त।

मेरी शामत आ गई राजकुमारी ! मेरे खोटे कर्मों से वह शीशा जो चीन से आया था टूट गया है।

वह दण्ड की प्रतीक्षा में थी परन्तु उसे क्या पता कि जेबुन्निसा

पर उपनिषदों का रङ्ग चढ़ चुका है। जेबुन्निसा मुस्करा कर बोली क्या कहती हो—

अज कज़ा आइनाये चीनी शिकस्त।
खूब शुद सामाने खुद बीनी शिकस्त॥

अच्छा हुआ विलासिता का सामान समाप्त हो गया, मैं दिन प्रति दिन उसे देखती, अभिमान होता। अब उसे देखूँगी नहीं, अभिमान भी नहीं होगा।

यह उस पर प्रभाव हुआ। यह उपनिषद् का जादू है। जो इन्हें पढ़ता या सुनता है उसी पर जादू होता है। यह सन् १६५७ की बात है। तब एक सौ वर्ष तक किसी अन्य भाषा में उपनिषदों का अनुवाद नहीं हुआ परन्तु एक सौ वर्ष बाद सन् १७५७ में बङ्गाल के नवाब शुजाउद्दौला के दरबार में मिस्टर जटियल नाम का एक फ्रांसीसी राजदूत था उसने किसी से फार्सी की उन उपनिषदों को सुना। सुना और मस्त हो गया। फार्सी के उपनिषद् उसने खरीदे। फ्रांस में ले गया। वहाँ एक सज्जन बर्नियर को दिये कि वह भी इन्हें पढ़े। बर्नियर पर भी जादू हुआ। उसने ये उपनिषद्, उनका कुछ भाग पैरिस के बड़े पादरी डूपारन को सुनाया उसने सुना तो निश्चय किया कि इन उपनिषदों को संस्कृत भाषा में पढ़ूँगा। वह पैरिस से चला। भारत में पहुँच गया। वहाँ १४ वर्ष तक संस्कृत पढ़ता रहा। संस्कृत का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उसने उपनिषदों को पढ़ा। उनका अनुवाद सन् १८०१ में फ्रैञ्च भाषा में किया। इस अनुवाद को कई लोगों ने पढ़ा। परन्तु सन् १८१२ में जब जर्मनी के महान् दार्शनिक पं० शौपनहार ने इन्हें पढ़ा तो वह चकित हो गया। उपनिषदों के सम्बन्ध में लिखते हुए उसने कहा—

"यद्यपि हमारे लिए संस्कृत को समझना कठिन है और हमारे पास वे साधन नहीं जिन से ठीक रूप में हम संस्कृत के रहस्यों को समझ सकें तो भी जहाँ तक हमने खोज की है उपनिषदों के प्रत्येक

भाग में गम्भीर विचार और उच्च भावनाएँ विद्यमान हैं। उपनिषदों का प्रत्येक उपदेश बहुत महत्त्वपूर्ण विचारों और बहुत ऊँची तथा सच्ची भावनाओं से भरपूर है। इस समय भारत का वायुमण्डल हमारे आसपास घूम रहा है। कितने ही महापुरुषों के पवित्र और ऊँचे विचार हमारे अन्दर प्रविष्ट हो रहे हैं। संसार में किसी भी पुस्तक का स्वाध्याय इतना लाभ देने वाला और आत्मा को ऊपर उठाने वाला नहीं जितना उपनिषदों का है। मेरे आत्मा को उपनिषदों से ही शान्ति मिली है और मरने के पश्चात् भी इन्हीं से शान्ति मिलेगी।"

यह शौपनहार कहता है, और मैक्समूलर। उसने जब उपनिषदों को देखा तो लट्टू हो गया। उपनिषद् पढ़ने के लिए वह जर्मनी से पैरिस जा पहुँचा। वहाँ फ्रैञ्च भाषा में उपनिषदों को पढ़ा। फार्सी में भी पढ़ा और बिना किसी झिझक के उसने लिखा—

"ये उपनिषद् उन लोगों की बुद्धि का फल है जो महान् बुद्धि वाले थे। हमारा ईसाई मत उनके समक्ष कभी जड़ नहीं पकड़ सकता। भारत की यह विद्या यूरोप भर में वह निकलेगी और हमारे ज्ञान तथा विचारों में परिवर्तन लायेगी।"

और तब अपनी पुस्तक "India What can it teach us" उन्होंने लिखी। मैक्समूलर जी ने लिखा—

"यदि वास्तविकता को जानने का उद्देश्य यह है कि मनुष्य मृत्यु के भय से बच जाये और मृत्यु के लिए पूरी शक्ति से तैयार हो जाये तो मेरी सम्मति में उपनिषदों के वेदान्त का अध्ययन करने के अतिरिक्त दूसरा कोई भी श्रेष्ठ मार्ग नहीं। मैं उपनिषदों का बहुत ऋणी हूँ कि उनसे मुझे अपने जीवन सुधार में बहुत सहायता मिली है। ये उपनिषद् ग्रन्थ सारे संसार के धार्मिक साहित्य में आत्मिक उन्नति के लिए सदा एक बहुत उच्च और समादरणीय स्थान घेरे रहे हैं और सदा घेरे रहेंगे।"

यह मैक्समूलर जी ने लिखा और तब स्वेडन में एक विद्वान् हुए, पालडयूसन उनका नाम था। उन्होंने उपनिषद् पढ़े तो लिखा—

"उपनिषद् मनुष्य की मेधा बुद्धि का अनमोल फल है। जीवन और मृत्यु के समय, केवल दुःख और कष्ट के समय नहीं अपितु हर समय प्रतिक्षण उन से ऐसी शान्ति मिलती है जैसी और कहीं भी नहीं मिलती। भारत के लोगों के पास आत्मज्ञान और आत्मशान्ति का ऐसा कोष है जो संसार में और किसी के पास भी नहीं। मैं जब भारत की यात्रा के लिए गया तो बहुत सी लाभप्रद बातें मुझे मिलीं। परन्तु सबसे लाभदायक और सब से महत्त्वपूर्ण है पवित्र भाषा में ऋषियों का ज्ञान देने वाले उपनिषद्।"

यह पालडयूसन ने लिखा। और ज्योकोलेट जो पाण्डीचिरी के गवर्नर थे उन्होंने भी ऐसी ही बात लिखी। उनके पश्चात् श्रीमती एनीबीसेण्ट ने उपनिषदों को पढ़ा। वह तो उन पर लट्टू हो गई। उसके पश्चात् मिस्टर ह्यूम ने अपनी पुस्तक Dogmas of Budhism में लिखा—"मैंने अरस्तु, सुकरात, अफलातून और कितने ही अन्य विद्वानों के ग्रन्थ बहुत ध्यान से पढ़े हैं। परन्तु जैसी विद्या इन उपनिषदों में मैंने देखी और जितनी शांति उन से पाई वैसी तो और किसी भी स्थान पर मुझे नहीं मिली।"

और अपनी पुस्तक Is God Knowable में श्री जी० आर्क एम० ए० ने लिखा—

"उपनिषदों के ज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य की आत्मिक, मानसिक और सामाजिक आवश्यकताएं किस प्रकार पूर्ण हो सकती हैं। वेदान्त अर्थात् उपनिषदों की शिक्षा अत्यन्त ऊंची सुन्दर और ऐसे सत्य से भरपूर है जो मनुष्य के हृदय पर चित्रित हो जाता है क्योंकि जब मनुष्य संसार के दुःखों और चिन्ताओं में घिर जाता है तब इन के अतिरिक्त उसके मन और आत्मा को शान्ति देने के लिए दूसरा कोई भी साधन उसे नहीं मिलता जो उसे सहारा दे सके।"

यह उन्होंने लिखा। परन्तु इस प्रकार तो मैं आपको कितने ही विद्वानों के विचार बताता रहूँगा। भारत के, विदेशियों के, एक दो या दस ने नहीं सहस्रों विद्वानों ने उपनिषदों की प्रशंसा में अपने विचार प्रकट किये हैं। उन सब को सुनाऊँ तो आप थक जायेंगे। इसलिये उन्हें छोड़ता हूँ। आप भी इन विचारों को नहीं अपितु इस ज्ञान को जानना चाहेंगे जो उपनिषदों में विद्यमान है। तो सुनिये—

सब से पहला निचोड़, पहला खींचा हुआ इत्र जो उपनिषदों के स्वाध्याय से प्राप्त होता है वह यह कि दृढ़ संकल्प वाला बन। छान्दोग्य उपनिषद् में, वृहदारणक उपनिषद् में और दूसरे सभी उपनिषदों में इस दृढ़ संकल्प का वार बार वर्णन आता है। शांडल्य ऋषि की विद्या है कि

क्रतुमयः पुरुषः

यह मनुष्य अपने संकल्पों का बना हुआ है। जैसा संकल्प करोगे, जैसे विचार, जसे भावना होगी वैसे ही बन जाओगे। आगे चल कर उन्होंने फिर कहा—

कृतं लोकं पुरुषोऽभिजायते।

अर्थात् मनुष्य अपने बनाये संसार में उत्पन्न होता है। आप कहेंगे कि आर्यसमाज की वेदी पर बैठ कर यह कैसी बात कहता है आनन्द स्वामी। परन्तु सुनो यह बिल्कुल सत्य है कि मनुष्य अपने बनाये हुये संसार में उत्पन्न होता है। यह सत्य है कि संसार परमात्मा ने बनाया परन्तु यह संसार कैसा हो इसका निर्णय मनुष्य स्वयं करता है। कैसा उसका उद्देश्य हो, कैसे उसके मित्र और सम्बन्धी हों, कैसे माता पिता, भाई बहिन, पति पत्नी, पुत्र या पुत्री हों इसका निर्णय मनुष्य स्वयं करता है। जैसे विचार उसके हृदय में हों जैसी भावना उसमें हो वैसा ही उसका संसार बन जाता है। यदि उसके विचार खोटे हैं, भावनाएँ खोटी हैं तो स्मरण रखिये कि इस विचार-धारा के कारण वह खोटा ही बनेगा अच्छा नहीं बनेगा, और यदि

पवित्र विचार धारा उसके मन में हो रही है तो अच्छा बनेगा, पवित्र बनेगा खोटा कभी बन नहीं सकता। इसलिए दृढ़ संकल्प वाला बन, यह पहली बात है।

इस सम्बन्ध में छान्दोग्योपनिषद् के ऋषि ने महिदास की कथा लिखी। महिदास ऐतरेय यह उसका पूरा नाम है। वह यज्ञ करा रहा था। एक सौ सोलह वर्ष तक वह यज्ञ होने वाला था उस का स्वास्थ्य उत्तम न था। वैद्यों ने उसे देखा और कहा, "महिदास! इतनी देर तू जी नहीं सकता। इस यज्ञ को छोड़ दे। जो रोग तुझे लग गया है उस से तू बचेगा नहीं। महिदास था आत्मज्ञानी। यह जानने वाला कि—

क्रतुमयः पुरुषः ।

यह मनुष्य अपने संकल्पों का बना है। अतः दृढ़ संकल्प के साथ वह बोला—

स किं म एतदुपतपसि, योऽहमनेन न प्रेष्यामीति ।

ऐ मेरे रोग ! मेरे शत्रु ! मुझे क्यों तंग करता है तेरे किसी आक्रमण से मैं मरूंगा नहीं। मुझे मरना नहीं है।

और छान्दोग्य का ऋषि कहता है कि वह दृढ़संकल्प महिदास पूरे ११६ वर्ष तक जीता रहा—

स ह षोडशं वर्षशतमजीवत् ।

यही नहीं छान्दोग्य का ऋषि कहता है—

स ह षोडशं वर्षशतं जीवति य एवं वेद ।

कोई भी व्यक्ति जो दृढ़ संकल्प के साथ ऐसा चाहेगा वह ११६ वर्ष तक जीवेगा।

यह है दृढ़ संकल्प का फल। परन्तु दृढ़ संकल्प केवल रोग और व्याधि में ही मनुष्य को सफलता नहीं देता, हर बात में देता है। राजनैतिक कार्य हो या सामाजिक, शारीरिक कार्य हो या मान-

सिक, व्यापार हो या शिल्प, योग का मार्ग हो या संसार का रास्ता, किसी भी स्थान पर दृढ़ संकल्प के बिना कार्य नहीं चलता। और प्रत्येक क्षेत्र में जहाँ मनुष्य यह दृढ़ संकल्प करके आगे वढ़ता है कि "मैं इस कार्य को करूँगा, मैं इसे करता हूँ" वहाँ उसे सफलता मिलती है अवश्य !

रणवीर जव अमेरिका गया तो वहाँ से उसने अपने भाई के नाम बहुत से पत्र लिखे। एक पत्र में अमेरिका के प्रसिद्ध नगर शिकागो का वर्णन है। आज इस विशाल नगर में पृथिवी के ऊपर रेल चलती है, भूमि के नीचे रेल चलती है, आकाश में भी रेल चलती है। संसार के बड़े-बड़े भवन वहाँ हैं। इतना व्यापर है कि अमेरिका के किसी दूसरे नगर में इतना व्यापर नहीं होता। कुछ ही पहले इस शिकागो को अटलांटिक महासागर से कई सौ मील परे एक नहर के द्वारा सागर के साथ मिला दिया गया है। अव वह बन्दरगाह भी बन गया है। यह सव का सब निर्माण वहाँ केवल ९० वर्ष में हुआ है। ९० वर्ष पूर्व शिकागो केवल एक उजाड़ वन्यप्रदेश था। केवल तेज वदबू वाले शिकागो वहाँ होते थे। शिकागो अमेरिका के आदिवासियों की भाषा का शव्द है। इस का अर्थ है जंगली प्याज। केवल ये प्याज वहाँ स्वयं उत्पन्न होते थे, जहाँ आज संसार का एक विशाल और धनिकतम नगर वसा हुआ है। रणवीर ने तीव्रता के साथ इतने थोड़े समय में, इतनी महान् उन्नति को देखा तो एक सज्जन से पूछा, "इस का कारण क्या है ?" वह सज्जन इसे साथ लेकर शिकागो के टाऊन हाल में गये। शिकागो के आदर्श टाऊन हाल की दीवार पर मोटे सुनहरी अक्षरों में जो लिखा हुआ था उसे दिखा कर उस सज्जन ने कहा, "यह हमारा आदर्श है। हमारा संकल्प, जिसके कारण हमें लगातार सफलता मिली है और वे शव्द थे—

I will do it.

मैं करूँगा यह कार्य। इस प्रकार दृढ़ संकल्प होकर जो लोग

आगे बढ़ते हैं उन्हें निश्चि रूप से सफलता प्राप्त होती है क्योंकि जाति हो या देश व्यक्ति हो या सम्प्रदाय—

ऋतुमयः पुरुषः

मनुष्य अपने संकल्पों का बना हुआ है। यह है उपनिषद् से सीखने की पहली बात। दृढ़ संकल्प वाले बनो। यदि ऐसा न करो मेरे भाई। उपनिषद् की कथा सुनो, सुन कर घर चले जाओ तो फिर स्मरण रखो कि उपनिषद् की कथा सुनने से कोई लाभ नहीं। कथा सुनते हो या पढ़ते हो तो उससे कुछ सीखने का प्रयत्न करो।

सीखने की पहली बात है दृढ़ संकल्प। ऐसा संकल्प करके आगे बढ़ो तो भी तुरन्त सफलता नहीं मिल जायेगी। याद रक्खो, इस संसार में ऊंच भी है नीच भी। गर्मी भी है सर्दी भी, धूप निकलती है, वर्षा भी होती है। आदर मिलता है तो अनादर भी होता है, गले में फूलों के हार पड़ते हैं तो गालियां भी मिलती हैं। धन है तो निर्धनता भी है, स्वास्थ्य है तो रोग भी हैं। परन्तु जो व्यक्ति दृढ़संकल्प होकर अपने मार्ग पर डगमगाये विना निरन्तर आगे बढ़ता जाता है उसे अन्त में सफलता मिलती है अवश्य। एक उदाहरण देता हूँ सुनिये—

महर्षि दयानन्द ने महाभारत के युद्ध का हाल लिखते हुए उसके कारण बताये। सब से पहला कारण बताया परस्पर की फूट। आपस की इस फूट के कारण महाभारत के समय इस देश का महानाश हुआ।

वही फूट आज हम फिर इस देश में देखते हैं। हर ओर दलबन्दियां हैं, प्रति ओर पार्टियां। एक दूसरे को गाली देते हैं। हर कोई दूसरे को नीचा दिखाने का प्रयत्न करता है। यह तो देश का दुर्भाग्य है, विनाश का चिह्न है। स्मरण रखो, ऐ भारतवासियो यदि तुमने मिल कर रहना न सीखा, यदि तुमने फूट की इस डायन को देश से न भगाया, तो जिस स्वतन्त्रता को इस कठिनता से प्राप्त किया है वह रहेगी नहीं। देश की उन्नति होगी अवश्य, वह शक्ति

शाली बनेगा अवश्य परन्तु उस समय बनेगा जब तुम परस्पर मिलकर रहने का दृढ़ सङ्कल्प कर लोगे। और जो बात देश के लिए आवश्यक है वही परिवार के लिये भी आवश्यक है। एक परिवार में सब लोग मिल के रहते हैं सब भाई इकट्ठे रहते हैं परन्तु यह संसार वाले किसी को मिल कर रहने तो नहीं देते। सर्पों की भाँति कुछ लोग हैं जो दूसरों को डसने का ही प्रयत्न करते रहते हैं। इन्हें किसी का सुख से रहना, मिल कर रहना अच्छा नहीं लगता। ऐसे लोग प्रयत्न करते हैं कि भाई को भाई से लड़ा दें। ऐसी दशा में दृढ़ सङ्कल्प ही परिवार की एकता को बचाता है। परिवार की दशा में दृढ़ सङ्कल्प क्या है? यह कि सुख हो या दुःख हम मिल कर रहेंगे। किसी ने कुछ कम या अधिक रुपया ले लिया है तो इसकी चिन्ता नहीं करेंगे। किसी को थोड़ा अधिक सुख मिल गया है और किसी को थोड़ा कम तो इसके लिये परस्पर लड़ेंगे नहीं। ऐसा दृढ़ सङ्कल्प जो लोग कर लेते हैं उनके विरुद्ध दुष्ट से दुष्ट प्रकृति का मनुष्य भी कुछ कर नहीं सकता। उनका सङ्गठन दृढ़ रहता है और जो शक्ति तथा शान्ति एकता में है वह फूट में तो है नहीं।

एक प्रसिद्ध कथा है। कदाचित् पहले भी सुनी हो। एक व्यक्ति था बहुत निर्धन। परिवार बहुत बड़ा था। खाने को कुछ नहीं। दशा बहुत खराब हुई तो परिवार को लेकर ग्राम से चल पड़ा कि कहीं दूसरे नगर में जाये। परिश्रम करके पेट पालेंगे। ग्राम से चले। चलते गये। रात्रि हुई तो एक वृक्ष के नीचे उन्होंने डेरा डाल दिया। पिता ने अपने बड़े बेटे से कहा, "बेटा जाओ, आसपास के वन से कुछ लकड़ियां ले आओ ताकि आग तो जलाएं। बेटा चलने लगा तो छोटा भाई बोला, इन्हें मत भेजो मैं जा के लाता हूँ। उस से छोटे ने कहा, "नहीं पिता जी मैं लाता हूँ।" पिता ने कहा, अच्छा बेटो सभी कार्य करो। एक व्यक्ति लकड़ी ले आये, दूसरा पानी, तीसरा पत्थर लाके चूल्हा बना ले। सब मिल कर कार्य करने लगे।

थोड़ी देर में चूल्हा वन गया। लकाड़ियां आ गईं, आग जली, पानी भी आ गया। उस वृक्ष पर एक पक्षी रहता था। उस ने जब यह सब कुछ देखा तो हँस कर कहा, "अरे भोले लोगो सव कुछ तुम ले आये, परन्तु खाने को तो कुछ नहीं लाये, पकाओगे क्या ? खाओगे क्या ?"

समझाने के लिये यह कथा वनाई गई है, वैसे पक्षी वोलते तो नहीं हैं। वड़े लड़के ने ऊपर देखा। पक्षी को देखते हुए कहा, "तुझे खायेंगे हम। ठहर ! अभी तुझे पकड़ता हूँ।"

पक्षी ने भयभीत हो कर कहा, "नहीं भाई ! ऐसा न करो। मुझे न खाओ। मैं तुम्हें एक स्थान दिखाता हूँ जहाँ तुम्हें सब कुछ मिल जायेगा।"

उन लोगों ने पक्षी के साथ थोड़ी दूर जा कर एक स्थान देखा। पक्षी ने कहा, "इस स्थान को खोदो।" उन्होंने खोदा तो देखा नीचे एक वहुत वड़ा कोष है। सोना चांदी हीरे जवाहरात। सभी कुछ इस में है। उस दौलत को उन्होंने निकाल लिया। अब परिश्रम की आवश्यकता नहीं थी इसलिये दूसरे दिन अपने ग्राम में वापिस आ गये। धन वहुत था आनन्द से रहने लगे। उनके पड़ौसी ने यह दशा देखी तो पूछा, "अरे ! तुम यह एक ही रात में इतने सम्पत्तिशाली कैसे हो गये।" इन लोगों ने पड़ोसी को अपनी सारी कथा सुना दी। उस वृक्ष की बात भी बता दी। पक्षी की बात भी। पड़ोसी ने सोचा यह तो वहुत अच्छा उपाय है। वह भी अपने सारे परिवार को लेकर ग्राम से चल पड़ा। रात्रि में उस वृक्ष के समीप पहुँचा। वहाँ डेरा डाल दिया तो उसने अपने वड़े पुत्र से कहा, "पुत्र ! जा के थोड़ी लकड़ियाँ ले आओ। पुत्र ने क्रोध से कहा, "छोटे को क्यों नहीं कहते। उसकी क्या टांगें टूट गई हैं ?" पिता ने छोटे को कहा, वह बोला "मैं तो थक गया हूँ वहुत। मुझ से तो चला नहीं जाता। दूसरों को क्यों नहीं कहते ? इन की टांगों में पानी तो नहीं पड़ा।" पिता ने दूसरों से

कहा परन्तु कोई भी नहीं गया। तंग आकर उसकी पत्नी ने कहा, "अच्छा, कोई नहीं जाता तो मैं ही जाती हूँ। परन्तु पति ने कहा, "अरे तू कहां जायेगी। बैठी रह। कहीं हाथ पाँव तोड़ कर आ जायेगी।" और कोई भी नहीं गया। लकड़ियाँ नहीं, पानी नहीं, चूल्हा नहीं, कुछ भी नहीं आया वहाँ। वृक्ष पर बैठा वही पक्षी इस तमाशे को देखता रहा। तब बोला, "अरे तुम विचित्र लोग हो। लकड़ी नहीं, पानी नहीं, खाने का सामान नहीं, तब क्या भूखे रहोगे? खाओगे क्या?" एक लड़के ने तुरन्त कहा, "तुझे खायेंगे।" पक्षी ने हँसते हुए कहा, "आराम से बैठे रहो। मुझे खाने वाले चले गये। तुम आपस में ही फूटे बैठे हो। तुम से कुछ नहीं होगा।" यह कहा और उड़ के चला गया वह कहीं दूर किसी वृक्ष पर।

यह है एकता और फूट का परिणाम। जो लोग मिल कर रहते हैं उन्हें निश्चित रूप से सम्पत्ति मिलती है, सुख मिलता है और जो मिल कर नहीं रहते उन्हें असफलता के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। परन्तु यह एकता दृढ़ संकल्प के विना तो होती नहीं। इसके लिए तप करना पड़ता है, त्याग करना पड़ता है कि कुछ भी हो जाये कोई भी कहे, हम परस्पर न लड़ेंगे।

परन्तु मैं तो महिदास की बात सुना रहा था कि कितने दृढ़ निश्चय से कहा, "मैं ११६ वर्ष तक जीऊंगा अवश्य।" उसका संकल्प पूर्ण हुआ। किस प्रकार हुआ? इसका वर्णन भी उपनिषद् में लिखा है। उपनिषद् ने मनुष्य को यज्ञ कहा है—

पुरुषो वाव यज्ञः।

यह पुरुष सचमुच यज्ञ है। इस यज्ञ में तीन सवन है। पहला प्रातः सवन, दूसरा मध्यम सवन, तीसरा सायं सवन। अर्थात् मनुष्य का जीवन यज्ञ रूप होके, दूसरे के भले के लिये जारी रहके तीन अवस्थाओं में से होकर निकलता है। प्रातः सवन का छन्द गायत्री छन्द है जिसमें २४ मात्रायें हैं। माध्यन्दिन सवन का छन्द है त्रिष्टुप् छन्द

जिसमें ४४ मात्राएँ हैं। और सान्ध्य सवन का छन्द है जगती छन्द जिसमें ४८ मात्राएँ हैं। भाव यह है कि मनुष्य यज्ञरूप होके २४ वर्ष तक ब्रह्मचर्याश्रम में रहे, तब यज्ञ रूप होके ४४ वर्ष तक गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम में रहे और जब जीवन की संध्या आ जाये तो ४८ वर्ष तक संन्यासाश्रम में रहे। इन सब को जोड़ कर देखिये तो ११६ वर्ष हो जाते हैं। महिदास ने अपने जीवन को यज्ञमय बना दिया। यज्ञ-रूप बनने के कारण उसे दृढ़ संकल्प प्राप्त हुआ। उसने प्रातः सवन से कहा २४ वर्ष तक मरूँगा नहीं। मैं यज्ञरूप हूँ। यज्ञ का यह भाग पूर्ण करके मुझे माध्यन्दिन सवन में पहुँचना है। और माध्यन्दिन सवन में पहुँच कर उसने फिर कहा, "मैं यज्ञरूप हूँ मुझे मरना नहीं। माध्यन्दिन सवन को पूर्ण करके सान्ध्य सवन में पहुँचना है और सान्ध्य सवन में पहुँच कर उसने दृढ़ संकल्प से कहा मुझे मरना नहीं है, ४८ वर्ष तक मुझे इस यज्ञ के अन्तिम भाग को पूरा करना है।

यह है दृढ़ सङ्कल्प बनाने की विधि। मनुष्य अपने आपको यज्ञ रूप बना ले तो उसका दृढ़ सङ्कल्प सफल होता है, निश्चित रूप से सफल होता है।

इस को Auto Suggestion अपने आपको हिपनोटाइज करना कहते हैं। इस प्रकार अपने आपको हिपनोटाइज करके महिदास ११६ वर्ष तक जीता रहा।

अपने आपको यज्ञ रूप बनाने से ही दृढ़ सङ्कल्प पैदा होता है।

और ये जो तीन सवन—यज्ञ के तीन भाग मैंने बताये ये क्या हैं? प्रातः सवन को कहते हैं दीक्षा। ऐसी दशा जिसमें तप करना है। भोजन का ठीक प्रबन्ध नहीं, पानी का नहीं, खाने का नहीं, रहने का नहीं, फिर भी तप की भावना से ज्ञान और शक्ति प्राप्त करते जाना। ब्रह्मचर्य को धारण करके अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाना—यह दीक्षा है। कष्ट, क्लेश, संकटों को सहन करना यह दीक्षा है।

माध्यन्दिन सवन को कहते हैं उपसदा अर्थात् सुख, चैन, आनन्द, खेल, हंसते गाते हुए अपना और दूसरों का भला करते हुए कमाते और खर्च करते हुए आगे बढ़ते जाना।

और सान्ध्य सवन को कहते हैं दक्षिणा। अर्थात् केवल दूसरों के कल्याण के लिए जीवन धारण करना। अपना समय अपनी सम्पत्ति, अपना स्वास्थ्य, अपना सब कुछ लोक कल्याण में लगा देना। सारे संसार को अपना परिवार समझकर उसके भले के लिए प्रयत्न करते रहना।

ये तीन बातें जिस जीवन में हैं यह दीक्षा, उपसदा और दक्षिणा वह यज्ञमय जीवन है। और जो व्यक्ति यज्ञ रूप है उसका दृढ़ संकल्प कभी असफल नहीं होता।

परन्तु ये तीनों दशाएँ दीक्षा, उपसदा और दक्षिणा केवल जीवन की प्रातः मध्याह्न और सायं नहीं। जीवन में यह दशाएँ वार-वार आती हैं। दीक्षा का अर्थ है कष्ट और क्लेश सहन करना। यह भावना हर समय विद्यमान रहनी चाहिए। दुःख हो, सुख हो, कष्ट हो, रोग हो, शोक हो, सम्पत्ति हो, विपत्ति हो, सफलता हो, असफलता हो प्रत्येक दशा में मस्त रहना चाहिये तीन प्रकार की मस्तियां होती हैं संसार में। कुछ लोग चालमस्त होते हैं उनकी चाल में मस्ती होती है। कुछ लोग मालमस्त होते हैं। माल है तो मस्त हैं नहीं तो रो रहे हैं। कुछ लोग हालमस्त होते हैं। कैसा भी हाल हो वे हर दशा में प्रसन्न रहते हैं। हर हाल में मस्त। किसी भी समय उनके हृदय में निराशा उत्पन्न नहीं होती, हर समय वे प्रसन्न रहते हैं। इस विश्वास के साथ आगे बढ़ते हैं कि अन्ततोगत्वा कभी न कभी तो दुःखों का अन्त होगा ही। उनसे पूछो कि "प्रसन्न क्यों हो?" तो कहते हैं, "ईश्वर ने हमें प्रसन्न रहने के लिए बनाया है।" और जो लोग रोते रहते हैं उनसे पूछो, "रोते क्यों हो?" तो कहते हैं, "शकल ही ऐसी है।" अच्छा भाई शकल ही ऐसी है तो फिर रोओ

परन्तु देखो यह जीवन को सफल बनाने का मार्ग नहीं है। यह अपने आपको यज्ञ रूप बना देना नहीं। अपने आपको यज्ञरूप बनाना है तो आशावादी बनो। निराशावादी न बनो। ऊपर की ओर देखो, नीचे की ओर न देखो। वेद कहता है—

उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।

मैंने तुझे ऊपर उठने के लिए बनाया है नीचे गिरने के लिये नहीं। इसलिए रो नहीं, नीचे न गिर, ऊपर उठ। हँसता हुआ कह—

राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रजा है।
यहाँ यूँ भी वाह वाह है और वूँ भी वाह वाह है॥

इसलिए अपने विचार को छोटा न बना, खोटा न बना। आशावादी जिस क्षेत्र में जायेगा वहीं उसको सफलता मिलेगी। कोई रोग, कोई कष्ट, कोई विवशता, कोई असहायता, यतीमी, निर्धनता उसे सफलता से रोकेगी नहीं।

रोग के सम्बन्ध में छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि यदि कभी रोगी हो जाओ तो अपने आपको रोगी मत कहो। यह कहो कि मैं तप तप रहा हूँ, कुछ बुरे कर्म थे अपने तप से उन्हें समाप्त कर रहा हूँ, ये बुरे कर्म समाप्त होंगे तो फिर सुख ही सुख है।" यह है भावना जो सच्चे ईश्वर विश्वासी के हृदय में उत्पन्न होती है। वह अपने मन को गिरने नहीं देता, दुर्बल नहीं होने देता।

अब देखिये यूरोप हो या भारत। संसार में जितने भी महान् पुरुष हुए उनकी सफलता का रहस्य क्या था यही आत्मविश्वास और दृढ़ सङ्कल्प। आत्मविश्वासी और दृढ़ सङ्कल्प वाला व्यक्ति बिजली से नहीं डरता, शत्रु से नहीं डरता, तूफान से नहीं डरता, गोलियों और तलवारों से नहीं डरता, पिस्तौलों और बन्दूकों से नहीं डरता, एटम बम्बों और हाइड्रोजन बम्बों से नहीं डरता। लगातार आगे बढ़ता है वह और इस विश्वास के साथ बढ़ता है कि उसे सफलता

मिलेगी अवश्य।

दृढ़ सङ्कल्प वाले लोग किस प्रकार कार्य करते हैं यह प्रह्लाद के जीवन में देखिये। रोया नहीं वह, गिला नहीं किया। दृढ़ सङ्कल्प से उसने कहा, "तुम सागर में फेंकना चाहते हो फेंक दो, पहाड़ से गिराना चाहते हो गिरा दो, अग्नि में झोंकना चाहते हो तो झोंक दो परन्तु मैं अपने प्रभु का नाम लेना नहीं छोड़ सकता।"

डूबत जर्व न बात कछु लैं जैं लागी लाग।
जहाँ प्रीति काची नहीं कहा पानी कहा आग॥

महाराज हरिश्चन्द्र ने हर प्रकार के कष्टों को सहा, अपने विचारों में लड़खड़ाहट न आने दी। अपने मार्ग पर डगमगाये नहीं। यही दृढ़ सङ्कल्प ध्रुव में था। एक टाँग पर खड़ा होकर वह तप करता रहा। आवाज आई माँग क्या माँगता है? ध्रुव ने कहा, "प्रभो! मैं व्यापारी नहीं, मैं व्यापार करने नहीं आया तेरा दर्शन पाने आया हूँ। इसके विना और कुछ भी मुझे नहीं चाहिए।" और यही दृढ़ सङ्कल्प मूलशंकर में था। घर में किसी वस्तु की कमी नहीं थी परन्तु दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि सच्चे शिव के दर्शन पाऊँगा। घर वालों ने देखा कि युवक बालक वैरागी हुआ जाता है। सोचा इसकी शादी कर दें। होने लगी तैयारियाँ।

यह शादी है न इसे संस्कृत में विवाह कहते हैं। ऐसी जंजीर है यह जिसमें वन्ध जाने के बाद फिर मनुष्य कठिनता से छूटता है।

देखो मैं तो बहुत संस्कृत जानता नहीं। यहाँ पं० दयाराम जी शास्त्री बैठे हैं उनसे पूछिये कि विवाह का अर्थ क्या है? विवाह का शाब्दिक अर्थ है विशेषरूप से बोझा ढोना। शादी वादी कोई अर्थ नहीं है इसका, बोझा ढोना अर्थ है, सो ढोते रहो बोझा मेरे बच्चो! इस बोझे का अन्त नहीं।

पञ्जाबी की एक बहुत सुन्दर कहावत है—

आवे देया खोतया, ते आवे हेठ खलोतया ।
कच्चियाँ ले आवेगा, ते पक्कियाँ ले जावेगा ॥
आवे नहीं ओ मुकणा, ते तू नहीं ओ छुटणा ॥

ढोते रहो बच्चू, ढोते रहो । ये ईंटें समाप्त होने वाली नहीं हैं। यह आवा ऐसे ही चलता रहता है । यह जंजीर एक बार बन्ध जाये तो फिर टूटती नहीं । मूलशंकर भी इसी जंजीर से बन्धे जा रहे थे। विवाह की तैयारियाँ हो चुकी थीं। घर में गीत गाये जा रहे थे। मिठाइयाँ बन रही थीं। मूलशंकर के मन ने कहा, "अब फँस गये तो मुक्ति नहीं मिलेगी । उठ तोड़ दे इस जंजीर को ।" और रात्रि में जब सब लोग सो गये तो मूलशंकर माता पिता के लाड़ को, घर की सम्पत्ति को, सुख को, सब को लात मार कर दृढ़ सङ्कल्प के साथ घर से निकल पड़े, पहुँचे नर्वदा के तट पर । वहाँ एक एक योगी की कुटिया में गये, सब से कहा, "मैं सच्चे शिव के दर्शन करना चाहता हूँ ।" सब ने कहा, "मूलशंकर तू अभी बालक है, यह मार्ग महाकठिन है ।" मूलशंकर ने कहा, "मैं प्रत्येक कष्ट सहन करूंगा ।" योगियों ने कहा, "तुझे ब्रह्मचर्यव्रत की दीक्षा लेनी होगी ।" मूलशंकर ने कहा, "लूंगा ।" दीक्षा ले ली । अपना नाम रक्खा शुद्ध चैतन्य । कठिन तप किया । परन्तु—मगर परन्तु क्या घण्टा तो हो गया । इसलिये शेष बातें कल ।

॥ ओ३म् तत् सत् ॥

दूसरा दिन

ओ३म् ! त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

उपनिषदों के सन्देश के क्रम में कल मैंने कहा था कि संसार और मनुष्य के समक्ष आज अनन्त समस्याएँ हैं। यह भी कहा था कि इन समस्याओं को दूर करने के लिए विज्ञान ने बहुत से आविष्कार किये। मनुष्य के शरीर को सुखी बनाने के लिए बहुत सी नई वस्तुएँ उस ने निर्मित कर दीं। इनसे शारीरिक सुख मिला अवश्य, परन्तु मनुष्य की वास्तविक समस्यायें तो नहीं सुलझीं। सुलझने के स्थान पर वे बढ़ गईं और बढ़ती जा रही हैं क्योंकि विज्ञान ने इस आधारभूत बात को भुला दिया कि मनुष्य केवल शरीर नहीं अपितु आत्मा भी है। इसमें एक नहीं दो आत्मा बैठे हैं। एक वह आत्मा जो सुख और दुःख को भोगता, कर्म करता और उसके फल को पाता है। दूसरा वह आत्मा जिसको 'परमात्मा' कहते हैं। जो सारे संसार का निर्माता और संचालक है। सब शक्तियों का स्वामी है। सभी कर्मों का फल प्रदाता है और सब कुछ करने पर भी केवल द्रष्टा बन कर परम आनन्द में मग्न होकर बैठा रहता है। इन दोनों को भूल कर विज्ञान मनुष्य को सुखी करने के लिए आगे बढ़ा। निश्चित रूपेण वह न तो ऐसा कर सकता था न कर सका। जब तक वह आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी अन्वेषण नहीं करेगा तब तक इससे कोई भी समस्या नहीं सुलझेगी। अब देखिये कि कौन सी समस्या सुलझ गई है। पौने दो अरब वर्ष हो गये इस संसार को बने हुए तब से आज तक विज्ञान निरन्तर उन्नति कर रहा है परन्तु आज तक वह यह न जान सका कि मृत्यु क्या है? यदि व्याधि है तो इसकी ओषधि

क्या है ? यदि रोग नहीं तो शरीर के साथ आत्मा भी मर जाता है या जीवित रहता है ? और यदि जीवित रहता है, तो कहाँ जाता है ? क्यों तुरन्त यह चुप हो जाता है ? आज तक किसी ने भी तो मृत्यु के उस पार से पत्र लिख कर नहीं बताया कि मृत्यु के पश्चात् होता क्या है ? बड़े-बड़े दार्शनिक, डाक्टर वैज्ञानिक भी उस पार गये हैं किसी ने भी कोई सन्देश नहीं भेजा। ऐसा पर्दा गिरता है कि सूत्रधार का नाम और चिह्न ही निःशेष हो जाता है, और फिर जितने कष्ट क्लेश हैं, वे बढ़ते ही जाते हैं, कम होने में नहीं आते।

यह सब कुछ कहते हुए विदुर मुनि को कथा सुना कर मैंने कहा था कि संसार की समस्याओं का समाधान अध्यात्म-ज्ञान और अध्यात्मवाद है। यह भी कहा था कि इस ज्ञान को उपनिषद् देते हैं। यह भी कहा था कि आज जितने भी रोग हैं जितनी भी समस्याएँ हैं सब की समाप्ति इस अध्यात्मवाद से हो सकती है।

आज एक भाई मिले। उन्होंने कहा कल आपने अध्यात्मवाद की बहुत प्रशंसा की परन्तु यह तो बताया नहीं कि अध्यात्मवाद है क्या ?

वस्तुतः कल यह बताने से रह गया अतः आज सुनिये। अध्यात्म का अर्थ है वह अवस्था जब आत्मा सात्विक बुद्धि में स्थिर हो जाता है। ऐसी अवस्था में आत्मा जो भी कार्य करता है, वह कल्याण करने वाला होता है, उन्नति की ओर ले जाने वाला होता है, उसमें पवित्रता होगी। स्वार्थ नहीं, घृणा नहीं, शत्रुता नहीं, अपितु अनन्त प्रेम की भावना होगी ऐसी अवस्था में, अतः ऐसा आत्मा निरन्तर उन्नति करता जायेगा। इन्द्रियों की तृप्ति से ऊपर होकर आत्मभाव में पहुँच कर कर्म तो करेगा, परन्तु लिप्त नहीं होगा।

तब मैंने यह भी बताया कि विदेशी विद्वानों ने उपनिषदों के सम्बन्ध में क्या कुछ कहा है। दाराशिकोह, बर्नियर, शोपनहार, मैक्समूलर और कई दूसरे लोगों की सम्मति भी आपके समक्ष रक्खी।

और उसके पश्चात् मैं कह रहा था कि उपनिषद् का सब से प्रथम सन्देश है—दृढ़ संकल्प। जो भी करना है, दृढ़ संकल्प कर के आगे बढ़ो, अवश्य सफलता मिलेगी। इस क्रम में मैं आपको मूलशंकर की कथा सुना रहा था। दृढ़ संकल्प करके वे घर से निकले कि सच्चे शिव के दर्शन पाऊँगा। निकल पड़े वे घर से। परन्तु उन के पिता तो उन्हें बाँधना चाहते थे। वे भी स्थान-स्थान पर तलाश करने लगे। अन्त में सिद्धपुर के मेले में उन्हें पकड़ लिया। उन्हें फुसलाया, डराया, धमकाया, और जब देखा कि मूलशंकर किसी प्रकार नहीं मानते तो कितने ही सैनिकों के पहरे में उसे कैद कर दिया। सैनिकों से कहा, "देखो यह भागने न पाये।" सैनिक पहरा देने लगे। रात्रि हो गई। जाग रहा है मूलशंकर। चौकीदार भी जाग रहे हैं। दूसरी रात आ गई मूलशंकर सोया नहीं। चौकीदार भी सावधान थे। तीसरी रात्रि आ गई। मूलशंकर अब भी जाग रहा है। पहरेदारों ने कहा यह तो कहीं नहीं जाता, जाने का प्रयत्न भी नहीं करता। यह जायेगा नहीं। थके हुये थे ऊँघने लगे। मूलशंकर ने देखा तो सोचा, अब समय है। मन ही मन में कहा मूलशंकर भाग सके तो भाग नहीं तो फिर शायद अवसर न मिले। यह सोचा और चुपके से पुनः भाग निकले। यह है दृढ़ संकल्प की बात। यदि मूलशंकर का सङ्कल्प दृढ़ न होता तो वह सोचता अब क्या करें भाग गये थे, पकड़े गये फिर विवाह ही करालें। अन्य लोग भी तो कराते हैं। परन्तु मूलशंकर ने ऐसा नहीं सोचा। उनके हृदय में एक लगन थी कि सच्चे शिव के दर्शन करने हैं। इस लगन के लिए वे फिर उस गुरु की खोज करने लगे जो इन्हें सच्चे शिव के दर्शन करा दे। तब नर्वदा के तट पर रहने वाले योगियों की कुटियाओं में, उत्तराखण्ड की कन्दराओं में, हिमालय की गुफाओं में—कौन सा स्थान है जहाँ वे नहीं पहुँचे और जहाँ शिव-दर्शन के लिए उन्होंने कठिन तप नहीं किया।

मैं जब से साधु बना हूँ तब से देश के कितने ही स्थानों में घूमा हूँ, उत्तराखण्ड के पहाड़ों पर भी कई बार गया हूँ परन्तु जहाँ कहीं जाता हूँ सब से तीव्र इच्छा यह होती है कि जहाँ जहाँ महर्षि दयानन्द समाधि लगा कर बैठे वहाँ मैं भी आत्मचिन्तन करूँ। और कैसे कैसे स्थान मैंने देखे हैं, कैसी कैसी गुफायें। अलखनन्दा की वह नदी जिसकी चर्चा महर्षि दयानन्द ने भी की है, मैंने देखी। बहुत भयानक नदी है वह। इस समय भी ऐसा प्रतीत होता हैं जैसे वह मेरी आंखों के समक्ष बह रही है। सचमुच उसमें बर्फ के छोटे छोटे नुकीले टुकड़े भागते हैं। जल बर्फ की भाँति शीतल है। एक योगी को मिलने के लिए उस महान् जगद्गुरु ने उस नदी को पार किया तो बर्फ के टुकड़ों से पांव घायल हो गये। टांगों से रक्त बहने लगा। अलखनन्दा का प्रवाह बहुत तीक्ष्ण है। उस प्रवाह के कारण देव दयानन्द कई स्थानों पर झाड़ियों में उलझे। काँटों में भी बिंधे। पास कोई कपड़ा नहीं, कोई कम्बल नहीं। शीत से बचने का कोई साधन नहीं। परन्तु धन्य हो बाल ब्रह्मचारी दयानन्द! आप एक क्षण के लिए भी रुके नहीं। यह है दृढ़ सङ्कल्प।

मार सहे अन्धेर की, अटकें कष्ट अनेक।
धर्म वीर की अन्त लों पर न टरेगी टेक॥

फिर एक और कवि ने भी कहा है—

देख कर जो सख्त तकलीफों को घबराते नहीं।
काम कितना ही कठिन हो पर जो अकुलाते नहीं॥
भाग्य पर रह करके जो पीछे हैं पछताते नहीं।
भीड़ पड़ने पर भी जो चञ्चलता दिखलाते नहीं॥
होते हैं इक आन में उनके समागम सब भले।
सब जगह सब काल में रहते हैं वे फूले फले॥

ऐसे दृढ़-सङ्कल्पी को सहायता मिलती है अवश्य। मूलशंकर को भी सच्चे शिव के दर्शन पाने में सफलता हुई। और यह सफलता पा

चुके तो हृदय ने कहा—दयानन्द इस अमृत को अकेला न लूट, इस संसार का भी ध्यान कर, जो दुःखी है। उसके पार जा। यह अमृत उसको भी दे।

तब वे आ गये।

यह है दृढ़-सङ्कल्प का परिणाम। जो कोई भी दृढ़ सङ्कल्प लेकर आगे बढ़ता है उसे सफलता मिलती है अवश्य परन्तु यह दृढ़-सङ्कल्प सफल होता है उस समय जब इसके साथ अपने आप पर भरोसा भी हो। संस्कृत में इसे कहते हैं 'आत्म-विश्वास', यह विश्वास कि मेरे बाहुओं में बल है, मेरे मस्तिष्क में बुद्धि है, मुझे सफलता मिलेगी अवश्य। ऐसा व्यक्ति सफल होता है और जो ढिलमिल है, जिसमें आत्म-विश्वास नहीं उस में प्रथम तो दृढ़-सङ्कल्प होता नहीं, हो भी जावे तो सफल नहीं होता। दुकान खोली है आपने। एक व्यक्ति पूछता है "क्यों जी ! आपने दुकान खोली है क्या ?" और आप मुख पर बारह बजा कर कहते हैं—"हाँ खोली तो है पता नहीं चलेगी भी या नहीं।" तो स्मरण रक्खो ऐसी दुकान चलेगी नहीं। दुकान खोली है तो आत्म-विश्वास से कार्य लो। कोई पूछे तो कहो, "हाँ खोली है दुकान। मैं अपने ग्राहकों से मीठा बोलूँगा। ईमानदारी से कार्य करूँगा, परिश्रम करूँगा, लाभ कम लूँगा, मेरी दुकान निश्चित रूप से चलेगी।" तो निश्चित जानिये ये दुकान चलेगी ही। कोई उसे रोक न सकेगा।

वेद में मन्त्र आते हैं न ?

मन्त्र में शक्ति होती है। हमारे पौराणिक भाई तो प्रत्येक मन्त्र की भिन्न-भिन्न शक्ति मानते हैं। परन्तु मन्त्र का अर्थ क्या है ? मन्त्र का अर्थ है विचार। इस विचार में इतनी शक्ति है जितनी एटमबम्बों हाइड्रोजनबम्बों, बन्दूकों, सेनाओं और शासनों में भी नहीं। विचार की शक्ति से साम्राज्य उलट जाते हैं, युग पलट जाते हैं। देश बनते और समाप्त हो जाते हैं, विचार की शक्ति ही मन्त्र की शक्ति है

क्योंकि मन्त्र का अर्थ है विचार। जिन जातियों ने, राष्ट्रों ने ऊपर उठना होता है, बनना होता है, उनमें अच्छे विचार उत्पन्न होते हैं। लोग दूसरों के सुख को सुख, इनके दुःख को दुःख समझने लगते हैं। दूसरे के भले में अपना भला समझते हैं। देश के लिए तप और त्याग की भावना उनमें जगती है। इसका परिणाम होता है कि राष्ट्र ऊपर उठता है, शक्तिशाली बनता है। इसके विपरीत यदि फूट के विचार उत्पन्न हो जायें; यदि प्रत्येक व्यक्ति और दल अपने लिये सोचने लगे, यदि उन में कुछ स्वार्थ की भावनाएँ जाग उठें, बहुत से दल बन जायें और प्रत्येक दल दूसरे दल को शत्रु समझने लगे, उसे नष्ट करने के लिए चालें चलने लगे तो फिर महानाश आता है निश्चित रूप से कोई उसे रोक नहीं सकता।

देखो विचार की शक्ति।

महाभारत का युद्ध होने वाला था। विपक्षी सेनाएँ एक दूसरे के समक्ष खड़ी थीं। पाण्डवों का सब से बड़ा योधा था अर्जुन। स्वयं भगवान् कृष्ण उनका रथ चला रहे थे। अर्जुन ने कहा, "महाराज! मेरे रथ को दोनों सेनाओं के बीच में ले चलिये जिससे मैं दोनों ओर की शक्तियों को देख सकूँ।" श्री कृष्ण ने ऐसा ही किया। अर्जुन ने दोनों ओर के योधाओं को देखा तो एक विचार उसके मन में उत्पन्न हुआ। दोनों ओर उसके भाई थे। सम्बन्धी थे। मित्र और नाती थे। तुरन्त विचार आया कि इनको मार कर राज्य मिल भी गया तो क्या करूँगा? उसी समय कवच आदि उतार दिये। तीर और तलवार फेंक दी। रथ से उतर कर परे जाकर खड़ा हो गया। भगवान् ने पीछे देखा तो अर्जुन ही नहीं। आश्चर्य से परे देखा तो अर्जुन वहाँ अत्यन्त उदास हुआ खड़ा था। भगवान् कृष्ण ने उसके पास जाकर कहा, "अर्जुन तुझे क्या हुआ?" अर्जुन ने अपने हृदय का भाव बताया तो श्री कृष्ण ने कहा, "अरे कायर! क्षत्रिय होकर यह कायरों जैसा विचार तेरे हृदय में क्यों आया?" परन्तु अर्जुन

तो माना नहीं, बोला, "मित्र! मैंने सोच लिया है, मैं लड़ूंगा नहीं। जिस राज्य के लिए अपने भाइयों की वृद्धों की और सम्बन्धियों की हत्या करनी पड़े वह मुझे चाहिए नहीं।"

तब भगवान् कृष्ण ने क्या किया? क्या पिस्तौल लेकर अर्जुन की छाती पर चढ़ बैठे? नहीं शान्ति से, गम्भीरता से उन्होंने बताया कि तू क्या है? यह संसार क्या है? तेरे आस पास खड़े हुए लोग क्या हैं? बताया कि आत्मा कभी मरता नहीं और शरीर कभी बचता नहीं। बताया कि जिनके मोह ने तुझे कर्तव्यच्युत कर दिया है वे लाखों बार उत्पन्न हुए हैं, लाखों बार उत्पन्न होंगे। बहुत महान्, बहुत सुन्दर ज्ञान है वह जिसे भगवद्गीता कहते हैं। इस ज्ञान के द्वारा भगवान् कृष्ण ने उसे दैवी सम्पदा और आसुरी सम्पदा का भी हाल सुनाया। सब कुछ सुन कर अर्जुन की आँखें खुल गईं। फिर से वह रथ में आया, फिर से कवच धारण किया, फिर से गाण्डीव ले लिया हाथ में। तीर चढ़ा दिया उसके ऊपर। जोश से बोला, "मैं लड़ूंगा महाराज!"

यह है विचार शक्ति।

एक विचार ने रथ से नीचे उतार दिया, दूसरे विचार ने फिर से रथ पर बिठा दिया।

और फिर देखो! औरंगजेब के दरबार में एक दीवान वलीराम जी थे। बहुत बड़े प्राड्विवाक थे वे। प्रतिदिन अभियोगों की फाइलें वे घर पर ले जाते थे। वहाँ से नोट लिख कर ले आते थे जिससे महाराज को अभियोग का निर्णय करने में सुविधा हो जाये। और दरबार का—औरंगजेब के दरबार का नियम यह था कि जो कोई भी दरबार में आता हाथ बाँध कर खड़ा रहता, जब तक महाराज उसे संकेत न देते, तब तक वह खड़ा ही रहता, बैठ नहीं सकता था। एक दिन वलीराम भी फाइलों का वस्ता लेकर दूसरों की भाँति

आये। महाराज का ध्यान किसी दूसरी ओर था। उसने वलीराम को देखा नहीं। दीवान वलीराम खड़े रहे। पाँच मिनट, दस मिनट, पन्द्रह मिनट व्यतीत हो गये। तभी एक विचार उनके मन में उठा। विचार उठते ही उन्होंने बस्ता नीचे रक्खा, स्वयं दरबार से बाहर निकल कर चले गये, घर पहुँचे, नौकरों से कहा, "जाओ, सारे शहर में, सभी बाजारों में और गलियों में घोषणा कर दो कि वलीराम अपना सब कुछ दान करता है, जो कोई जिस वस्तु को भी चाहे उसे आकर ले जाये।" यह कहा और स्वयं यमुना के किनारे जा के टाँग पर टाँग रख कर लेट गये। इधर महाराज ने दरबार को देखा आश्चर्य से सोचा, "वलीराम कहाँ है? शेष सब लोग तो आ गये दीवान वलीराम क्यों नहीं आये।" पूछा तो दूसरे दरबारियों ने कहा, "श्रीमन् वलीराम आये तो थे। पन्द्रह मिनट खड़े भी रहे। आप ने उनकी ओर देखा नहीं। वह अपना वस्ता रख कर चले गये।" औरंगजेब ने कहा, 'अच्छी बात है। जाओ! अब जाकर उन्हें बुला लाओ।" आज्ञा होते ही महाराज के दूत वलीराम के भवन पर पहुँचे। वहाँ यह देख कर चकित रह गये कि कितने ही लोग कितनी ही वस्तुएँ उठाकर लिये जा रहे हैं। कोई पलङ्ग ले जा रहा है। कोई मेज, कोई पात्र ले जा रहा है, कोई आटे की बोरी। महाराज के दूतों ने पूछा, "अरे! यह दिन दहाड़े लूट कैसे मच गई?" उन लोगों ने कहा, "लूट नहीं श्रीमन्! यह दीवान वलीराम का दान है। अपने घर की प्रत्येक वस्तु उन्होंने दान कर दी है।" महाराज के पुरुषों ने पूछा, "और वह स्वयं कहाँ हैं?" उन लोगों ने बताया, "यमुना के किनारे लेटे हैं पाँव फैलाये हुए।" राजपुरुष यमुना के तट पर पहुँचे। देखा कि वलीराम वास्तव में पाँव फैलाये लेटे हैं। कहा, "दीवान महोदय! आपको महाराज ने स्मरण किया है।" वलीराम बोले, "हम नहीं जायेंगे।" महाराज के व्यक्तियों ने भय-

भीत वाणी में कहा, "अरे वलीराम कैसी बात कहते हो, महाराज बुलाएँ और तुम जाने से मना कर दो।" वलीराम ने मस्ती से उत्तर दिया, "जाओ ! जाकर अपने महाराज से कह दो, कि वलीराम नहीं आयेगा।" महाराज के व्यक्ति वापस गये। हाथ जोड़ कर बोले, "श्रीमन् वलीराम आने के लिए मना करता है।" महाराज ने क्रोध से कहा, "मना करता है।" परन्तु वह था समझदार। थोड़ी देर में क्रोध शान्त हो गया। बोला, "अच्छी बात है, सभा का कार्य समाप्त करो, हम स्वयं उसके पास चलेंगे। काम समाप्त हुआ। औरंगजेब दरबारियों को लेकर पैदल हो यमुना की ओर चल दिया। वहाँ पहुँच कर वलीराम को पाँव फैलाए हुए देखा तो कहा, "वली-राम ! ये पाँव कब से फैलाये हैं ?" वलीराम ने उत्तर दिया, "जब से हाथ समेट लिये हैं।" औरंगजेब ने फारसी में पूछा, वलीराम ने फारसी में ही उत्तर दिया—

चूँ बन्दाए बन्दा बूदम बनजरम न नवाखती।
अखनू के क़दम दरआँ बन्दा परवर निहादम बदी दारम ताखती॥

अरे महाराज ! जब मैं तेरा दास बना हुआ था तब तक तूने मेरी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा और जब कि मैं प्रभु के चरणों में आ गया हूँ तो जो आंख उठा कर नहीं देखता था, स्वयं पैदल चल कर मेरे पास आ गया है।

यह है विचार की शक्ति।

प्रातःकाल वलीराम औरंगजेब के दरबार में खड़ा है और महा-राज उसकी ओर आँख उठा कर नहीं देखता। सायंकाल औरंगजेब वलीराम के दरबार में खड़ा है और वलीराम उसकी ओर देखना नहीं चाहता।

यह क्या है ? किसने यह परिवर्तन उत्पन्न कर दिया। विचार की शक्ति ने। बड़ी शक्ति है विचार में। परन्तु आप कहेंगे ये क्या पुरानी कथाएँ सुना रहा है। अच्छा, नई बात सुनो। अपने घर की

बात। दीपावली व्यतीत हो गई न, इस दीपावली की बात सुनो। दीपावली की रात को पिता जी मिठाई की टोकरी लाए। टोकरी को देखते ही सब बच्चे उस पर टूट पड़े। पप्पू भी, पट्टू भी, सुशीला भी, मंजू भी, रञ्जना, मञ्जना सभी टूट पड़े। जिसके हाथ में जो मिठाई आई वही उसने उठा ली। कोलाहल मच गया। प्रत्येक बच्चे के दोनों हाथों में मिठाई है और प्रत्येक बच्चा रो रहा है, जिसको इमरती मिली वह कहता है "लड्डू चाहिये।" जिसे लड्डु मिला वह कहता है "समोसा चाहिए" जिसे समोसा मिला वह कहता है, "बर्फी चाहिए।" सब रो रहे हैं। खूब कोलाहल हो रहा है। माता गई हुई थी साथ वाले घर में। वहाँ उसने यह कोलाहल सुना, वापस आई। कोलाहल के कारण को समझा। बच्चों को बिठाया, प्यार से समझाया। देखो बच्चो! पिता जी जब मिठाई लायें तब बांट कर खाओ। वस्तुएँ बहुत हैं। सब को प्रत्येक वस्तु मिल जायेगी। रख दो यह मिठाई टोकरी में। मिठाई रख दी गई। टोकरी फिर से तैयार हो गई। बच्चों के सामने रख दी गई। माँ ने कहा, "दूसरों को खिला के खाओ।" अब सुशीला कहती है पप्पू से, "भय्या! ले यह इमरती तू खाले।" पप्पू कहता है, नहीं दीदी! पहले तू खाले।" विद्या दक्षा को, रञ्जना अञ्जना को खाने के लिए कहती है। मंजू वर्षा को, चहुँ ओर प्रेम की नदी बहने लगती है।

अब देखो! छत वही है, भूमि वही, घर वही, मिठाई वही, बच्चे वही परन्तु जो घर थोड़ी देर पूर्व नरक बना हुआ था, वही अब स्वर्ग बन गया है। क्यों? विचार की शक्ति से। बहुत बलवती है यह शक्ति और इसके साथ दृढ़-सङ्कल्प भी सम्मिलित हो जाय तो समझो कि सोने पर सुहागा हो गया फिर कोई शक्ति सफलता को रोक नहीं सकती।

पाकिस्तान बनने से पूर्व एक रियासत थी बहावलपुर। अब तो पता नहीं कि वह है या समाप्त हो गई। उस समय थी। हम लोग

वहाँ प्रचार के लिए जाते थे। एक सत्सङ्ग सभा थी वहाँ। उसके द्वारा प्रचार होता था। सत्सङ्ग सभा के लोगों ने हमें छिनकू भक्त की कहानी सुनाई। बहावलपुर में रहता था वह। बहुत सदाचारी व्यक्ति था वह। भगवान् राम का भक्त था। राम का ही नाम लेता था, उन्हीं की पूजा करता था। सायंकाल दो तीन घण्टे दुकान खोलता, शेष सारा दिन पूजा करता था। दुकान थी घी की। असली शुद्ध घी वह बेचता था। लोगों को पता था कि असली घी लेना हो तो छिनकू भगत से मिलेगा अतः वे प्रतीक्षा करते थे। बहावलपुर के नवाब साहब भी जानते थे कि जब कभी असली घी की आवश्यकता हो तब छिनकू भगत की दुकान पर व्यक्ति भेजना चाहिये। बहुत आदर करते थे उसका। एक दिन प्रातःकाल छिनकू भगत दुकान में बैठे अपने भगवान् की भक्ति कर रहे थे। एक मुसलमान ग्राहक ने आकर आवाज दी। छिनकू ने आवाज देकर पूछा, "कौन है ?" ग्राहक ने कहा, "मैं घी लेने आया हूँ।" छिनकू ने कहा, "यह घी बेचने का समय नहीं है। मैं अपने भगवान् का स्मरण कर रहा हूँ, सायंकाल आना।" ग्राहक ने क्रोध में आकर भगवान् को गालियाँ देना आरम्भ कर दिया। छिनकू ने कहा, "देखो भाई! तुम मेरे इष्ट देव को गाली देते हो यदि मैं तुम्हारे पीर पैगम्बर को गाली दूँ तो तुम्हें कैसा लगेगा।" उस व्यक्ति ने समझने के बजाय राम को और गालियाँ देना आरम्भ कर दिया छिनकू ने भी उसके पीर पैगम्बर को गालियाँ दीं। वह व्यक्ति उसी समय गया पुलिस के पास। जाकर रिपोर्ट की कि छिनकू ने पैगम्बर को गाली दी हैं। पुलिस वाले गये छिनकू को कैद करके कारागार में बन्द कर दिया। रात्रि के समय बहावलपुर के नवाब साहब को इस बात का पता लगा तो बहुत दुःखी हुए। मन ही मन में उन्होंने कहा, "यह तो बहुत बुरी बात हुई। छिनकू बहुत अच्छा व्यक्ति है बेचारा मारा जायेगा।" तब उन्होंने अपना एक निजी व्यक्ति रात्रि के समय कारागार में भेजा। उस व्यक्ति ने छिनकू को जाकर कहा, "भगत जी! मैं नवाब साहब

का सन्देशा लेकर आया हूँ। वे कहते हैं कल जब मुकदमा आरम्भ हो और आपका बयान लिया जाये तो कह दीजिये कि मैंने किसी पीर पैगम्बर को गाली नहीं दी। छिनकू ने कहा, "यह बात तो झूठ है। गाली मैंने दी थी। झूठ मैं बोल नहीं सकता।" दूसरे दिन अभियोग आरम्भ हुआ तो वहाँ भी छिनकू भगत ने यही कहा। बोले, "पहले इस व्यक्ति ने मेरे पीर पैगम्बर को गाली दी फिर मैंने भी इस के पीर पैगम्बर को गाली दी। उन दिनों बहावलपुर रियासत में पीर पैगम्बर को गाली देने का केवल एक दण्ड था—जिसने गाली दी है उसे 'संगसार' कर दिया जाये। छिनकू भगत को भी इसी दण्ड की आज्ञा हुई। नवाब साहब भी इस दण्ड को बदल नहीं सके। छिनकू भगत को एक वृक्ष से बाँध दिया गया। पत्थर बरसने आरम्भ हुए। पत्थर पड़ने लगे। छिनकू भगत राम नाम का जप करने लगे। एक पत्थर आया 'राम' दूसरा पत्थर आया 'राम'। सारा शरीर रक्त रञ्जित हो गया परन्तु प्राण नहीं निकले 'राम' के नाम की जय बन्द नहीं हुई।

छिनकू का एक मुसलमान मित्र था। उसने यह दृश्य देखा तो उसकी आँखों में आँसू आ गये। रोता हुआ छिनकू भगत के पास पहुँचा बोला, "भगत जी! यह दृश्य मुझ से देखा नहीं जाता मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं तलवार से आपका सिर काट दूँ जिससे यह कष्ट समाप्त हो जाये जो आपको हो रहा है।" छिनकू ने मुस्कराते हुए कहा, "मित्र! तुम व्यर्थ चिन्ता करते हो, मुझे तो अभी तक एक भी पत्थर नहीं लगा। इस शरीर को अवश्य लगे हैं। दर्द इसे होता है मुझे नहीं और यह शरीर तो एक दिन मरने वाला है, इसकी चिन्ता मुझे क्यों हो? तुम भी चिन्ता मत करो। नवाब साहब की आज्ञा है कि मुझे संगसार किया जाये यह आज्ञा पूर्ण होने दो। परन्तु मुसलमान मित्र को यह बात समझ नहीं आई। वह दौड़ता हुआ अपने घर गया। वहाँ से तलवार लाकर छिनकू का सिर काट

दिया। कहते हैं कि सिर कटने पर भी राम की ध्वनि सुनाई देती रही।

यह बात विचार और दृढ़ सङ्कल्प से होती है। यह है उपनिषद् का प्रथम सन्देश। दृढ़ सङ्कल्प करके आगे बढ़ो फिर तूफान रोक नहीं सकते, आँधियाँ रोक नहीं सकतीं, बाढ़ रोक नहीं सकती। तब सफलता मिलती है अवश्य।

यह दृढ़ सङ्कल्प आधारभूत बात है।

इसे भगवान् की भक्ति में लगाओ या सांसारिक कार्यों में। यदि सङ्कल्प दृढ़ है और विचार ठीक तो फिर सफलता मिलेगी अवश्य, चाहे किसी भी ओर बढ़ो। जो व्यक्ति आशावादी है, निराशावादी नहीं, जिसका सङ्कल्प दृढ़ है जिसका विचार पक्का है उसकी दशा आज चाहे कैसी भी हो, एक न एक दिन सुधरेगी अवश्य।

संसार-दीर्घ-रोगस्य सुविचारो महौषधम्।
कोऽहं कस्य च संसारो विवेकेन विलीयते॥

यह महर्षि वसिष्ठ की बात सुना रहा हूँ। देखिये क्या कहते हैं वे-

यह संसार का रोग बहुत भयानक है, सदा चलता आया है। और संसार क्या है? यह जन्म और मृत्यु, सृष्टि और प्रलय, प्रलय और सृष्टि। इससे बड़ा रोग दूसरा नहीं है। बहुत भयानक है यह। वर्तमान समय में औषध-विज्ञान ने बहुत से आविष्कार किये हैं। हमारे वैद्यों ने बहुत से रसायन बनाए हैं परन्तु इस रोग की चिकित्सा किसी आविष्कार से नहीं होती, किसी रसायन से नहीं होती। उन्होंने कहा "संसार नाम का यह जो भयानक रोग है उसकी औषध सब से बड़ी औषध-सुविचार है—उत्तम विचार। और वह उत्तम विचार क्या है—

कोऽहं कस्य च संसारो विवेकेन विलीयते॥

मैं क्या हूँ। यह संसार क्या है, इसको विवेक से समझना। और विवेक क्या है ? दूध का दूध और पानी का पानी कर देना। वास्तविकता को जान लेना, आत्म-तत्व को अनात्म-तत्व से पृथक् करके देखना। जड़पदार्थ और आत्मपदार्थ को एक दूसरे से पृथक् करके दोनों को समझ लेना यह है विवेक। इस अवस्था को योग की भाषा में विवेक ख्याति कहते हैं। यह दृढ़-सङ्कल्प और सुविचार से होता है।

जैन महात्माओं ने भी यही बात कही है। जैन धर्म की एक पुस्तक है 'गौतम गीता'। श्री अमृतचन्द मुनि ने उसको लिखा है। उसमें वे कहते हैं—

> विचारा हि मनुष्याणां प्रतिमानाः परंतप।
> विचारो यादृशो यस्य मर्त्यो भवति तादृशः॥

हे परंतप ! विचार ही मनुष्य के प्रतिनिधि हैं जिस व्यक्ति के जैसे विचार हैं वैसा ही वह हो जाता है।

जैसे विचार अपने भीतर उत्पन्न करोगे, वैसे ही होते जाओगे, इसमें सन्देह नहीं।

अब देखो ! अंग्रेज आया भारत में तो क्या लेकर आया अपने साथ ? क्या सेनाएँ, कोष, अस्त्र, शस्त्र ? नहीं ये सब कुछ तो अंग्रेज से बहुत अधिक भारत वालों के पास था। यह सब कुछ वह नहीं लाया। एक विचार ले कर आया, "ऐ भारत वासियो ! तुम अपनी व्यवस्था करने के योग्य नहीं हो इसलिये हम तुम्हारी शासन व्यवस्था करेंगे।"

यह विचार उसने दिया। इसके साथ ही यह विचार भी उसने दिया कि तुम्हारे पूर्वज बिल्कुल अज्ञानी और अनभिज्ञ थे। तुम्हारे जो वेद हैं, ये गड़रियों के बनाये हुये हैं। जिन्हें तुम वेद मन्त्र कहते हो वे मन्त्र वन्त्र कुछ नहीं गड़रियों के गीत हैं। वे भेड़ें और बकरियाँ

चराते समय जो कुछ गाते थे उसको उन्होंने संग्रहीत कर दिया है। और हमने उन सब विचारों को मानना आरम्भ कर दिया। अपना लिया है हमने। और हमारा राजपाट, स्वतन्त्रता, समृद्धि सब की समाप्ति हो गई। तभी अमेरिका से एक व्यक्ति बुलाया उन्होंने, मिस्टर वल्टियार उसका नाम था। उसने भारत की यात्रा करने के बाद लिखा, "भारतवर्ष के लोग बहुत सीधे सादे हैं। बहुत वेग से ये दौड़ना नहीं चाहते, तेज दौड़ने की अपेक्षा धीरे धीरे चलना पसन्द करते हैं। शनैः शनैः चलने के स्थान पर खड़े हो जाना पसन्द करते हैं, खड़े रहने की बजाये बैठ जाना पसन्द करते हैं, बैठने की बजाय लेटना पसन्द करते हैं, लेटने की बजाये सो जाना पसन्द करते हैं और सोने के स्थान पर मर जाना पसन्द करते हैं।" यह ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दिनों की बात है। इस प्रकार के विचार हमें मिले। हम को सम्मोहित कर दिया गया।

एक लाला जी की बात तो आपने सुनी होगी ? जिन्होंने एक गाय खरीदी थी। आजकल के दिन नहीं थे वे। पहले की बात है। बहुत उत्तम गाय न्हें ५०) में मिल गई। क्रय करके चल पड़े अपने घर की ओर। मार्ग में कुछ ठगों ने लाला को और गाय को देखा। सोचा यह गाय छीननी चाहिये। लाला जी आगे बढ़ रहे थे। तभी एक ठग ने उसके पास जाकर कहा, "राम राम लाला जी!" लाला जी बोले, "राम राम भाई।" ठग बोला, "यह बकरी तो बहुत अच्छी है।" लाला जी ने समझा यह व्यक्ति पागल है, बोले, बकरी नहीं भाई! यह गाय है। ठग ने कहा, "हो सकता है कि आपके गाँव में बकरी को गाय कहते हों। उसी समय दूसरा ठग वहाँ आ पहुँचा। पहले ठग ने कहा, "देखो भाई! इन लाला जी के ग्राम में बकरी को गाय कहा जाता है।" लाला जी ने क्रुद्ध हो कर कहा, "हम बकरी को गाय नहीं कहते। बकरी को बकरी कहते हैं। यह गाय है।" दूसरे ठग ने कहा लाला जी यह है तो बकरी, परन्तु इसका कद अच्छा है।

आप इसे गाय भी कह सकते हैं।" तभी तीसरा ठग पहुँच गया। उसने कहा, "वाह भाई! यह बकरी तो बहुत अच्छी है।" अब लाला जी चिन्ता में पड़े कि "यह हो क्या गया है। जो आता है इसे बकरी कहता है। कहीं वस्तुतः, यह बकरी तो नहीं।" उसी समय चौथा ठग आ गया। आते ही बोला, लाला जी यह बकरी तो बहुत सुन्दर है, कितने में क्रय की है?" अब लाला जी सम्मोहित होने लगे। गाय को उन्होंने ध्यान से देखा उसके चार थन भी देखे। सोचा भेंगे व्यक्ति को प्रत्येक वस्तु द्विगुणित होकर दिखाई देती है। मैं भी शायद भेंगा हो गया हूँ। बकरी के थन दो हैं, मुझे चार दिखाई दे रहे हैं। चौथे ठग ने लाला को चुप देखा तो बोला, "आप क्या इसे गाय समझ कर क्रय कर लाये हैं?" लाला जी ने धीरे से कहा, "समझा तो यही था।" ठग ने पूछा, "किस ग्राम से खरीदा था इसको?" लाला ने गाँव का नाम बताया। ठग ने कहा, "तब आप का क्या दोष है, उस ग्राम के लोग बहुत चालाक हैं। उनके पास जादू की लकड़ी है। जो जाता है उसके सिर पर फेर देते हैं तब उसे बकरी भी गाय दिखाई देने लगती है। परन्तु कितने में खरीदी आप ने यह बकरी?" लाला जी बोले ५०) में। चौथे ठग ने कहा, "हे भगवान्! इतना अन्याय। दस रुपये की बकरी है, आप पचास रुपये दे आये?" बहुत अधिक दुःख की बात यह है। बहुत तो हम कर नहीं सकते दस रुपये की बकरी है, हम बीस रुपये में क्रय कर सकते हैं।

अब लाला जी ने हिसाब लगाना आरम्भ किया। दस रुपये की बकरी है दे आया हूँ ५०)। चालीस रुपये का घाटा। दस रुपये की बकरी है मिलते हैं बीस। दस रुपये लाभ है, बेचो। और बेच डाली उन्होंने पचास रुपये की गाय बकरी समझ कर २०) में।

ओ भारत के लोगो! तुम्हारे देश में भी तो घी और दूध की नदियाँ बहती थीं। गङ्गा और यमुना तट पर तुम्हारे पूर्वज वेद

मन्त्रों से यज्ञ करते तो सारी वायु शुद्ध हो जाती थी। बहुत बड़े कोष थे तुम्हारे पास। परन्तु पश्चिम से आये कुछ ठग। असत्य विचार उन्होंने दिये। उन विचारों से सम्मोहित होकर तुमने देश की यह गाय बकरी समझ कर बेच दी।

परन्तु कलियुग में एक देव दयानन्द उत्पन्न हुए। उन्होंने देखा कि इस देश में सब कुछ है—सोना है चाँदी है, बाहुबल है, मस्तक में बुद्धि है, परन्तु सब व्यर्थ हो गये हैं क्योंकि विचार विपरीत हो गये हैं—

अगली सी ताजगी है फूलों में और फलों में।
करते हैं नृत्य अब तक मयूर जङ्गलों में॥
अब तक वही कड़क है बिजली की बादलों में।
पसती सी आ गई है पर दिल के वलवलों में॥

विचारधारा बिगड़ गई है। और देव दयानन्द ने दृढ़ सङ्कल्प किया कि इस विचारधारा को मैं बदल दूँगा। पूना में जो भाषण उन्होंने दिये, उन्हें मैंने देखा है। उन में एक स्थान पर वे कहते हैं कि "वेद के आधार पर मैं वायुयान बना सकता हूँ।" स्मरण रखिये उस समय वायुयान नहीं बना था। बन सकता है ऐसी आशा भी किसी को नहीं थी फिर भी डिण्डिम घोष के साथ उन्होंने कहा, "वेद के आधार पर मैं वायुयान बना सकता हूँ परन्तु एक वायुयान बनाकर करूँगा क्या? मैं तो इस देश की विचारधारा ठीक करना चाहता हूँ जो बिगड़ गई है। मैं इस विचारधारा को बदल देना चाहता हूँ जिससे यह देश जागृत हो। एक वार यह जागृत हो जाये तो सब कुछ स्वयमेव होने लगेगा।"

और उन्होंने वेद का प्रचार करने में अपना जीवन लगा दिया। आर्यसमाज की स्थापना भी उन्होंने वेद के विचारों का प्रचार करने के लिए की। उनके पश्चात् आर्यसमाज के जो नेता आये उन्होंने भी इस मिशन को अपने सामने रक्खा। परन्तु बाद में कुछ

लोग इस मिशन को भूलने लगे। तभी आर्यसमाज में दुर्बलता आने लगी। इस निर्बलता को दूर करने का एक मात्र साधन यह है कि आर्यसमाज अपने मिशन को याद रक्खे। वैदिक विचारों के प्रचार की ओर ध्यान दे। दूसरे झगड़ों में न पड़े। ऐसा करने से यह निर्बलता स्वयमेव दूर हो जायेगी। आर्यसमाज संसार की काया पलट कर देगा।

यह मैं आपके समक्ष दृढ़ सङ्कल्प और सुविचार की बात कह रहा हूँ। मनुस्मृति ने भी २।३ में यही बात कही है।

संकल्पमूलः कामो वै यज्ञः संकल्पसम्भवः।
व्रतानि यमधर्माश्च सर्वे संकल्पजाः स्मृताः॥ मनुस्मृति

इच्छा का मूल संकल्प है। सङ्कल्प किस को कहते हैं। इस कार्य से मुझे यह फल मिलेगा। यह सङ्कल्प है। इस के पश्चात् प्रयत्न होता है। प्रत्येक इच्छा का मूल सङ्कल्प है।

और यज्ञ—यज्ञ का अर्थ केवल हवन यज्ञ नहीं अपितु अपने और दूसरों के भले के लिये किया गया प्रत्येक कार्य यज्ञ है। आप दुकान शुरू करते हैं, मकान बनाते हैं, कारखाना चलाते हैं, स्कूल या कालिज या गुरुकुल खोलते हैं, यह सब यज्ञ हैं और मनु महाराज कहते हैं कि यज्ञ भी सङ्कल्प से होता है।

अब देखिये रीडिंग रोड का यह आर्यसमाज, क्या है यह? आज से दो तीन वर्ष पूर्व तो यह मन्दिर नहीं था। पाकिस्तान बनने से पूर्व बेयर्ड रोड के इस छोटे से स्कूल में आर्यसमाज के सत्सङ्ग होते थे। मैं भी कई बार उनमें आया। तब एक सज्जन थे लाला अनन्तराम। उनके मन में सङ्कल्प उत्पन्न हुआ कि आर्यसमाज बेयर्ड रोड का अपना मन्दिर होना चाहिये। सङ्कल्प उठते ही उन्होंने इस भूमि के लिए पत्र व्यवहार आरम्भ कर दिया। रुग्ण हो गये वे। कष्ट हुए उन्हें। रुकावटें आईं मार्ग में परन्तु उनका संकल्प दृढ़ था।

एक क्षण के लिए भी पीछे हटने का विचार उन के मन में नहीं आया और उस दृढ़ संकल्प का परिणाम है यह मन्दिर। एक संकल्प उठा लाला अनन्तराम जी के मन में। एक सृष्टि रची गई यहाँ। यह है संकल्प की शक्ति। प्रत्येक प्रकार के यज्ञ का जन्म संकल्प से होता है।

और व्रत। व्रत का अर्थ है जब तक जीऊँगा अपने वचन का पालन करूँगा। व्रत का अर्थ भूखों मरना नहीं। आजकल तो लोग विचित्र व्रत रखते हैं। आज व्रत है। काहे का व्रत है? आज मंगल का व्रत है। आज बुध का व्रत है। आज रविवार का व्रत है, आज शनिश्चर का है। पता नहीं कि सप्ताह के शेष दिनों ने क्या अपराध किया है। सब लोग प्रत्येक वार को व्रत रख लिया करें तो देश में अन्न की समस्या स्वयं सुलझ जाए। परन्तु आज के व्रत रखने वाले इस समस्या के समाधान के लिये तो व्रत नहीं रखते।

एक थी बूढ़ी मां। चार उसके बेटे थे। एक दिन बूढ़ी मां ने व्रत रक्खा। बड़े बेटे ने सोचा, "मां ने व्रत रक्खा है उसके लिए कुछ भेजना चाहिए।" दो दर्जन चित्ती वाले केले उस ने भेज दिये। दूसरे पुत्र ने सोचा, "मां ने व्रत रक्खा है अन्न तो वह खा नहीं सकती।" उसने १॥ सेर दूध भेज दिया। तीसरे पुत्र ने सिंहाड़े के आटे से बने हुए एक सेर पकौड़े भेज दिये। चौथे पुत्र ने फलों का एक टोकरा भेज दिया।

रात्रि में चारों पुत्र मां के पास पहुँचे तो बड़े लड़के ने कहा, "मां! तुझे दो दर्जन केले भेजे थे मैंने।" माँ ने कहा, "हाँ बेटा! वे मैंने सब खा लिये मेरा व्रत है न। रोटी तो मैं खा नहीं सकती।"

दूसरे पुत्र ने कहा, "माँ मैंने डेढ़ सेर दूध भेजा था।"

माँ ने कहा, "हाँ पुत्र! वह मैंने सब पी लिया।"

तीसरे पुत्र ने कहा, "माँ मैंने पकौड़े भेजे थे।"

माँ बोली, "हाँ बच्चा! अच्छे थे पकौड़े मैंने खा लिये।"

चौथे पुत्र ने कहा, "परन्तु माँ ! फलों का वह टोकरा तो होगा जो मैंने भेजा था।" माँ बोली, "कहाँ बेटा ! मैंने वह सारा टोकरा समाप्त कर दिया मेरा व्रत जो था।"

बड़े बेटे ने बात सुनी तो दौड़ा हुआ मकान की छत पर पहुँचा और पुकार पुकार कर कहने लगा। ओ मोहल्ले वालो ! अपने अपने बच्चों को सम्भाल कर रखना हमारी माँ ने व्रत रक्खा हुआ है।

नहीं, यह व्रत नहीं है। व्रत का अर्थ यह है कि जो वचन मैंने किया उसे जीवन भर पूर्ण करूँगा। और यह व्रत तथा यम (यम का अर्थ है अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) संकल्प से उत्पन्न होते हैं। एक युवक पिछले दिन मुझे मिला। मैंने पूछा, "सुनाओ क्या हाल है ?" वह मरी सी आवाज में बोला, "नौकरी ढूँढ़ रहा हूँ मिलती नहीं।" मैंने कहा, कैसे ढूँढ़ते हो नौकरी ?" वह बोला, "कार्यालयों में जाता हूँ। उन्हें कहता हूँ कि मैं बहुत निर्धन हूँ। माता-पिता हैं पत्नी और बच्चे हैं। घर की दशा बुरी है। कृपा करके कोई नौकरी दे दो। परन्तु कोई देता ही नहीं। मैंने कहा, अरे भाई ! इस प्रकार नौकरी नहीं मिलेगी। नौकरी चाहता है तो दृढ़ संकल्प और आत्मविश्वास लेकर जा। जहाँ जाता है उन्हें कह, "मैं नवयुवक हूँ। मुझ में योग्यता है। कार्य करने की शक्ति है। कार्य मैं दूसरे स्थान पर भी कर सकता हूँ परन्तु मुझे आपका कार्य पसन्द आया। मैंने सोचा कि आप के यहां कार्य करके आपके कार्य को और भी चमका दूँगा। इसलिए आप के पास आया हूँ।" इस प्रकार कहेगा तो नौकरी मिलेगी अवश्य। दूसरे लोग सोचेंगे कि जिस व्यक्ति में इतना आत्मविश्वास है, जिसे अपनी योग्यता पर भरोसा है वह हमारे लिये भी लाभदायक होगा। इसके स्थान पर यदि अनुनय विनय करने जायेगा, अपनी निर्धनता और उपवास का रोना रोयेगा—एक बच्चे के पास कोट नहीं, दूसरे के पास पाजामा नहीं, तीसरे के पास जूता नहीं तो स्मरण रख

एक क्षण के लिए भी पीछे हटने का विचार उन के मन में नहीं आया और उस दृढ़ संकल्प का परिणाम है यह मन्दिर। एक संकल्प उठा लाला अनन्तराम जी के मन में। एक सृष्टि रची गई यहाँ। यह है संकल्प की शक्ति। प्रत्येक प्रकार के यज्ञ का जन्म संकल्प से होता है।

और व्रत। व्रत का अर्थ है जब तक जीऊँगा अपने वचन का पालन करूँगा। व्रत का अर्थ भूखों मरना नहीं। आजकल तो लोग विचित्र व्रत रखते हैं। आज व्रत है। काहे का व्रत है? आज मंगल का व्रत है। आज बुध का व्रत है। आज रविवार का व्रत है, आज शनिश्चर का है। पता नहीं कि सप्ताह के शेष दिनों ने क्या अपराध किया है। सब लोग प्रत्येक वार को व्रत रख लिया करें तो देश में अन्न की समस्या स्वयं सुलझ जाए। परन्तु आज के व्रत रखने वाले इस समस्या के समाधान के लिये तो व्रत नहीं रखते।

एक थी बूढ़ी मां। चार उसके बेटे थे। एक दिन बूढ़ी मां ने व्रत रक्खा। बड़े बेटे ने सोचा, "मां ने व्रत रक्खा है उसके लिए कुछ भेजना चाहिए।" दो दर्जन चित्ती वाले केले उस ने भेज दिये। दूसरे पुत्र ने सोचा, "मां ने व्रत रक्खा है अन्न तो वह खा नहीं सकती।" उसने १॥ सेर दूध भेज दिया। तीसरे पुत्र ने सिंहाड़े के आटे से बने हुए एक सेर पकौड़े भेज दिये। चौथे पुत्र ने फलों का एक टोकरा भेज दिया।

रात्रि में चारों पुत्र मां के पास पहुँचे तो बड़े लड़के ने कहा, "मां! तुझे दो दर्जन केले भेजे थे मैंने।" माँ ने कहा, "हाँ बेटा! वे मैंने सब खा लिये मेरा व्रत है न। रोटी तो मैं खा नहीं सकती।"

दूसरे पुत्र ने कहा, "माँ मैंने डेढ़ सेर दूध भेजा था।"

माँ ने कहा, "हाँ पुत्र! वह मैंने सब पी लिया।"

तीसरे पुत्र ने कहा, "माँ मैंने पकौड़े भेजे थे।"

माँ बोली, "हाँ बच्चा! अच्छे थे पकौड़े मैंने खा लिये।"

चौथे पुत्र ने कहा, "परन्तु माँ ! फलों का वह टोकरा तो होगा जो मैंने भेजा था।" माँ बोली, "कहाँ बेटा ! मैंने वह सारा टोकरा समाप्त कर दिया मेरा व्रत जो था।"

बड़े बेटे ने बात सुनी तो दौड़ा हुआ मकान की छत पर पहुँचा और पुकार पुकार कर कहने लगा। ओ मोहल्ले वालो ! अपने अपने बच्चों को सम्भाल कर रखना हमारी माँ ने व्रत रक्खा हुआ है।

नहीं, यह व्रत नहीं है। व्रत का अर्थ यह है कि जो वचन मैंने किया उसे जीवन भर पूर्ण करूँगा। और यह व्रत तथा यम (यम का अर्थ है अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह) संकल्प से उत्पन्न होते हैं। एक युवक पिछले दिन मुझे मिला। मैंने पूछा, "सुनाओ क्या हाल है ?" वह मरी सी आवाज में बोला, 'नौकरी ढूंढ़ रहा हूँ मिलती नहीं।" मैंने कहा, कैसे ढूँढ़ते हो नौकरी ?" वह बोला, "कार्यालयों में जाता हूँ। उन्हें कहता हूँ कि मैं बहुत निर्धन हूँ। माता-पिता हैं पत्नी और बच्चे हैं। घर की दशा बुरी है। कृपा करके कोई नौकरी दे दो। परन्तु कोई देता ही नहीं। मैंने कहा, अरे भाई ! इस प्रकार नौकरी नहीं मिलेगी। नौकरी चाहता है तो दृढ़ संकल्प और आत्मविश्वास लेकर जा। जहाँ जाता है उन्हें कह, "मैं नवयुवक हूँ। मुझ में योग्यता है। कार्य करने की शक्ति है। कार्य मैं दूसरे स्थान पर भी कर सकता हूँ परन्तु मुझे आपका कार्य पसन्द आया। मैंने सोचा कि आप के यहां कार्य करके आपके कार्य को और भी चमका दूँगा। इसलिए आप के पास आया हूँ।" इस प्रकार कहेगा तो नौकरी मिलेगी अवश्य। दूसरे लोग सोचेंगे कि जिस व्यक्ति में इतना आत्मविश्वास है, जिसे अपनी योग्यता पर भरोसा है वह हमारे लिये भी लाभदायक होगा। उसके स्थान पर यदि अनुनय विनय करने जायेगा, अपनी निर्धनता और उपवास का रोना रोयेगा—एक बच्चे के पास कोट नहीं, दूसरे के पास पाजामा नहीं, तीसरे के पास मोजा नहीं तो स्मरण रख

दूसरे लोग केवल एक उत्तर देंगे कि हमारे यहाँ भिखारियों के लिये स्थान नहीं। हम ने अनाथालय नहीं खोल रखा, किसी अन्य स्थान पर जा।

यह दृढ़-संकल्प और आत्मविश्वास प्रत्येक कार्य के लिये आवश्यक है इस से प्रभु-दर्शन और सांसारिक सुख दोनों की प्राप्ति होती है।

स्वयं वाजिस्तंन्वं कल्पयस्व स्वयं यजस्व स्वयं जुषस्व।
महिमा तेऽन्येन न सन्नशे॥ (यजु० २३ । १५)

ओ युवक! बोल क्या चाहता है? क्या तू करोड़पति बनना चाहता है? राज्य चाहता है? शक्ति चाहता है? मुक्ति चाहता है? ईश्वर का दर्शन चाहता है? सब कुछ मिलेगा तुझे, परन्तु एक शर्त कि इस के लिये तुझे स्वयं प्रयत्न करना पड़ेगा। स्वयं ही यज्ञ रचाना होगा। अपने आप को उस यज्ञ में आहुति बना कर डाल देना होगा। तब जो कुछ भी तू चाहेगा वह होगा अवश्य। और यदि तू समझता है कि कोई दूसरा तुझे बड़ा बना देगा तो स्मरण रख ऐसा कभी नहीं होगा।

ओ भारत के साम्यवादियो! यदि तुम समझते हो कि चीन के साम्यवादी भारत में आकर तुम्हें राज्य शक्ति ले देंगे, तो याद रक्खो तीन काल में भी यह बात कभी नहीं होगी। अपने बाहुओं पर भरोसा करो। अपने पुरुषार्थ से ही कुछ मिलेगा तो मिलेगा अन्यथा तो मिलेगा नहीं।

अब देखिये कि परमात्मा ने मनुष्य को कैसा बनाया? देखिये कि उसका सिर सब से ऊपर रहता है और अन्य सब पशुओं के सिर नीचे रहते हैं केवल मनुष्य का सिर ऊंचा रहता है। इसका कारण क्या है? यह कि शेष सब पशु क्या गाय, भैंस, घोड़ा, बकरी, शेर, चीते—सभी पशु अपने कर्मों से लज्जित हैं। सिर को नीचा करके

चलते हैं केवल मनुष्य ही सिर को ऊंचा करके चलता है क्योंकि वह श्रेष्ठतम प्राणी है। इस बात को समझो। ऐ मनुष्य! ईश्वर ने तुम्हें सिर झुका कर, सिर को नीचा करके चलने के लिये नहीं बनाया, सिर को ऊंचा करके चलने के लिये बनाया है। परन्तु यह सिर ऊंचा कब तक होता है, जब व्यक्ति में दृढ़-संकल्प हो और आत्म-विश्वास हो।

मैं बार बार इस दृढ़-संकल्प और आत्मविश्वास पर बल देता हूँ तो इसलिये कि यह मानव जीवन का आधार है। जीवन की सफ-लता का सबसे बड़ा आधार यह है। इसके बिना जीवन खोखला है।

इस आत्मविश्वास और दृढ़-संकल्प को उत्पन्न करने के लिये सब से प्रथम विश्वविद्यालय मां है। वह जन्म के साथ ही, उस से पूर्व भी बच्चे को उत्तम विचार देना आरम्भ करती है। हमारे शास्त्रों ने इस बात को बहुत महत्त्व दिया। महर्षि दयानन्द ने जो संस्कार विधि हमारे सामने रखी वह है क्या? इन्हीं श्रेष्ठ विचारों, आत्मविश्वास और दृढ़-संकल्प को उत्पन्न करने का प्रयत्न।

बच्चा उत्पन्न होता है तो पिता उसका सबसे पहला संस्कार करता है। उसे निहला धुला कर सोने की सलाई को शहद में भिगो कर उसकी जिह्वा पर लिखता है 'ओ३म्' तब उस के कान में कहता है 'वेदोऽसि'—तू वेद है। आप कहेंगे यह संस्कार क्या हुआ? बच्चा ओ३म् और वेद को क्या समझेगा? परन्तु स्मरण रखिये बच्चा भी समझता है। उस समय जो कुछ भी आप उसे कहते हैं उसका प्रभाव उसके मन पर होता है। उस से पूर्व भी जब वह माता की कोख में होता है माता के विचारों का प्रभाव उस पर होता है। यह मनो-विज्ञान की बात है। मनोविज्ञान को जानने वाले इसे समझते हैं। हमारे पूर्वज मनोविज्ञान को जानते थे। अतः उन्होंने इस संस्कार की आज्ञा दी।

पिता अपने पुत्र को कहता है। बच्चे ! यह संसार भयान जंगल है। इस में व्याधियां हैं, बुराइयाँ हैं, पाप हैं। इस वन तुझे आगे बढ़ना है। इस लिये एक साथी तुझे देता हूँ जिससे श्रे दूसरा कोई साथी नहीं। यह साथी ओ३म् है। इस के साथ ही म से ओ३म् लिख कर वह कहता कि देख जीवन की इस यात्रा में म की भाँति मीठा बोलना। कड़वा नहीं बोलना और फिर सोने सलाई से यह ओ३म् इसलिये लिखा कि तू अपने आपको पवित्र बना मूल्यवान् बन जिससे लोग तुझे सोने की भाँति सम्भाल कर रखें इस प्रकार आगे बढ़ो और इस साथी को याद रक्खो। संसार दूसरे साथी भी मिलेंगे। पिता के लिये पुत्र, पुत्र के लिये पिता, प के लिये पत्नी, पत्नी के लिये पति, भाई के लिये बहिन, बहिन लिये भाई, मित्र, सम्बन्धी—ये सभी तेरे साथी होंगे।

ये सब साथी अच्छे हैं। मैं इन की निन्दा नहीं करता। वेद नहीं करता, उपनिषद् भी नहीं करता, परन्तु ये सभी कुछ देर साथी हैं। कुछ देर के पश्चात् मुख मोड़ लेते हैं। रूठ जाते हैं, च जाते हैं।

पिता अपने बच्चों को कहता है, "ओ नन्हीं सी जान ! मैं तु ऐसा साथी देता हूँ जो किसी भी समय तुझ से पृथक् नहीं होगा जो प्रत्येक अवस्था में तेरे साथ रहेगा। जीवन में, मृत्यु में, सृष्टि प्रलय में, प्रतिवर्ष, प्रतिदिन, चौवीस घण्टे, प्रति मिनट, प्रति सैकि उस साथी के विना यात्रा चल नहीं सकती।

दीप जले बिन बाती न।
जीवन कटे बिन साथी न॥

यह साथी तुझे देता हूँ जिससे श्रेष्ठ साथी संसार में को दूसरा नहीं।

एतदालम्बनं श्रेष्ठं एतदालम्बनं परम्।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

यह कठोपनिषद् का सन्देश है।

इस का, ओ३म् का सहारा ही सब से बड़ा सहारा है। यही सब से परम आश्रय है। इस सहारे को जान कर, इस को धारण करके केवल इस संसार में नहीं ब्रह्मलोक में भी महिमा को प्राप्त होता है।

किस संग कीजिये मित्रता सब जग चालन हार।
निश्चल केवल है प्रभु उस संग करो प्यार॥

वह ही सच्चा साथी है। वह साथी आज तुझे देता हूँ उसे भूलना नहीं।

अश्मा भव, परशुर्भव।
हिरण्यमस्तृतं भव॥

पत्थर बन, कुल्हाड़ा बन, स्वर्ण की भाँति चमक। आप कहेंगे यह क्या आशीर्वाद हुआ? बच्चे के उत्पन्न होने पर प्रसन्नता मनाई जा रही है। वाजे वज रहे हैं। गीत गाये जा रहे हैं, प्रकाश किया जा रहा है और पिता उसे कहता है, "तू पत्थर हो जा।" परन्तु सुनो इस संसार में कभी कभी पत्थर भी बनना पड़ता है। पिता अपने वच्चे को कहता है, 'ओ मेरे छोटे से प्राण! यह संसार का जंगल सुनसान है यहाँ कितने ही पशु, कई पशु समान मनुष्य हैं—इसलिए अपने आपको शक्तिशाली वना। पत्थर की चट्टान बना कि आँधियाँ और तूफान और बवण्डर आय, बाढ़ आयें और तुझे हिला न सकें। समुद्र की लहरें उछलती हैं, ज्वार भाटा आता है, सागर में लहरें प्रलयकारी नृत्य करती हैं। यान और नौकायें डूब जाती हैं। हर ओर उथल पुथल मच जाती है। परन्तु सागर में खड़ी हुई चट्टान, क्या वह भी समाप्त होती है? नहीं लहरें आती हैं, टकराती हैं, समाप्त हो जाती हैं, चट्टान ज्यूँ की त्यूं खड़ी रहती है। लाखों तूफान, करोड़ों ज्वार-भाटे, अरबों लहरें भी उसको हिला नहीं सकतीं— पिता अपने पुत्र को विचार देता है—

बच्चे ! ब्रह्मचर्य से अपने शरीर को इतना दृढ़ बना जैसे चट्टान होती है। परन्तु इस संसार के केवल चट्टान बनने से तो कार्य नहीं चलता। कभी कभी कुल्हाड़ा भी बनना पड़ता है। जब अत्याचारी आप के देश पर, आपके धर्म पर, आपकी स्वतन्त्रता पर आक्रमण करे तब कुल्हाड़ा बन कर उस का सिर फोड़ देने की आवश्यकता होती है। अतः पिता अपने पुत्र को विचार देता है, बेटे ! केवल पत्थर नहीं कुल्हाड़ा भी बन जिस से अन्याय और अत्याचार से, पाप और अनाचार से अपने देश धर्म जाति और परिवार की रक्षा कर सके। कुल्हाड़ा बन जिस से तेरी विद्यमानता में किसी दीन पर अन्याय न हो किसी निर्दोष का जीवन न छीना जाये, किसी देवी का सतीत्व भंग न किया जाये। कुल्हाड़ा बन खरबूजा न बन।

यह खरबूजा भी विचित्र वस्तु है। छुरी खरबूजे पर गिरे या खरबूजा छुरी पर कटता सदा खरबूजा ही है। नहीं, खरबूजा बनने से संसार में कार्य नहीं चलता। जो लोग खरबूजा बनने का प्रयत्न करते हैं वे न अपनी रक्षा कर सकते हैं न दूसरों की कर सकते हैं लोग उन्हें खा जाते हैं। इसलिये कुल्हाड़ा बन।

और जब ये दोनों बातें हो जायें तब।

हिरण्यमस्तृतं भव ।

फिर चमक मेरे बच्चे ! स्वर्ण की भाँति चमक। फिर तेरी चमक को रोकने वाली कोई शक्ति नहीं।

ये हैं विचार, दृढ़-संकल्प और आत्मविश्वास के विचार, जिन्हें बच्चों को देने की आज्ञा हमारे पूर्वजों ने दी। परन्तु समय तो हो गया। शेष कल सही। दूसरे विश्वविद्यालयों की बात तो अभी रहती है।

॥ ओ३म् तत् सत् ॥

—❀—

तीसरा दिन

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ ।
अधा ते सुम्नमीमहे ।।

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

कल दृढ़-संकल्प और सुविचार की बात मैं कह रहा था कि सब से प्रथम विश्वविद्यालय जो उत्तम संकल्पों और विचारों को देता है वह माँ है। माँ चाहे तो बच्चे को शिवाजी और प्रताप बना दे, चाहे तो कायर बना दे। माता चाहे तो बच्चे को ईश्वर-भक्त और पुरुषार्थी बना दे, चाहे तो नास्तिक और निकम्मा बना दे। माता के हाथ में बहुत कुछ है। वह सबसे प्रथम विश्वविद्यालय है। इसके पश्चात् दूसरा विश्व विद्यालय जिसमें संकल्प और विचार मिलते हैं वह है हमारे चारों ओर फैला हुआ समाज। इस समाज में वे लोग जो हमारे समीप आते हैं—मित्र, सम्बन्धी, देश के नेता धर्म के प्रचारक, पण्डित उपाध्याय—ऐसे सभी व्यक्ति। यदि ये लोग नये बालक को अच्छे संकल्प और अच्छे विचार देंगे तो उसका कल्याण होगा। बुरे संकल्प और विचार देंगे तो उसके विनाश की नींव रख दी जायेगी। आजकल एक और कौतुक हम देखते हैं। कई लोग अमीर लोगों, अधिकार वाले लोगों की ताक में रहते हैं। जैसे ही इनका कोई पुत्र जवान होता है वैसे ही वे उसे फुसलाना आरम्भ कर देते हैं। उसे सिनेमा देखने की लत डालते हैं, शराब पोने का चस्का लगाते हैं, जुआ खेलने के व्यसन में फंसाते हैं। आरम्भ में निःशुल्क सिनेमा दिखाते हैं, शराब पिलाते हैं। वह समझता है मुझ से सहानुभूति कर रहे हैं। फिर मुफ्त की शराब तो काज़ी भी नहीं छोड़ता। यह भाग्यहीन भी पीता है। एक बार, दो बार, तीन बार और फिर वह पतन आरम्भ हो जाता है जिससे कोई महात्मा ही बचा सके तो

बचा सके कोई साधारण व्यक्ति तो बचा नहीं सकता। यह दूसरा स्थान है जहाँ से व्यक्ति अपने संकल्प और विचार लेता है। इसके पश्चात् तीसरा विश्वविद्यालय है पुस्तकें। अच्छे संकल्पों और अच्छे विचारों के लिए उत्तम पुस्तकें। अच्छे साधु और सन्तों के उपदेश, विद्वानों के भाषण। पुस्तकों का स्वाध्याय करना और उन पर विचार करना। इस लिये हमारे प्राचीन गुरुकुलों में विद्यार्थी जब गुरु से शिक्षा पाकर अपने घर को जाने लगता तो गुरु उसे उपदेश देते, सुनो बच्चे !

ऋतं च स्वाध्याय प्रवचने च। सत्यं च स्वाध्याय प्रवचने च। तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च। दमश्च स्वाध्याय प्रवचने च॥
(तै० उ० ९। १०)

प्रकृति नियमों पर चलो अवश्य परन्तु स्वाध्याय और प्रवचनों को मत भूलो। सत्य के मार्ग पर अवश्य चलो परन्तु स्वाध्याय और प्रवचन को मत भूलो। सन्तान उत्पादन करो परन्तु स्वाध्याय और प्रवचन को स्मरण रक्खो ! धन कमाओ परन्तु स्वाध्याय और प्रवचन को न भूलो।

कुछ भी करो परन्तु स्वाध्याय अवश्य करो। और यह स्वाध्याय क्या है, वेद, उपनिषद्, ब्राह्मण ग्रन्थ, गीता, रामायण, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, दर्शन ग्रन्थ, आर्याभिविनय, महाभारत का अनुशासन पर्व, शान्तिपर्व और इसी प्रकार के अन्य उत्तम ग्रन्थों को प्रतिदिन पढ़ना। जब तक ऐसा होता था तब तक हमारे देश में लोगों के विचार उत्तम थे, संकल्प शिव थे। देश शक्तिशाली था, संसार भर का गुरु था। परन्तु जब से स्वाध्याय की समाप्ति हुई तभी से इस देश का पतन भी आरम्भ हुआ।

महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में जहाँ भारत की गिरावट के कारण लिखे हैं वहाँ सब से प्रथम कारण लिखा है फूट, दूसरा कारण लिखा है "वेदादि उत्तम ग्रन्थों के स्वाध्याय का न रहना।"

यह है तीसरा विश्वविद्यालय। प्रथम माता, दूसरा समाज और तीसरी पुस्तकें। परन्तु वर्तमान युग में तो तीनों ही विश्वविद्यालय बिगड़ गये हैं। माता से उत्तम विचार नहीं मिलते। उसे अवकाश ही नहीं कि बच्चे को अच्छे विचार दे। समाज से उत्तम विचार नहीं मिलते, दूसरों को कहाँ से दे। और स्वाध्याय तो कोई करता ही नहीं। स्वाध्याय होना चाहिये वेद का। लोगों के घरों में वेद ही नहीं। जो पुस्तक ही घर में नहीं उसे पढ़ेगा कौन ?

हम लोग क्या करते हैं। कहीं प्रचार के लिये जाते हैं तो वेद की पुस्तक साथ ले जाते हैं। लोगों को दिखाते हैं कि देखो ये वेद हैं। इन्हें पढ़ने और पढ़ाने का तुम्हें अवकाश नहीं, इनके दर्शन तो कर लो।

परन्तु कोरे दर्शन से तो कुछ होता नहीं। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना के समय इसके नियम बनाये तो स्पष्ट कहा, "वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना, प्रत्येक आर्य का परम धर्म है।" परन्तु अब तो आर्यसमाजी भी वेद नहीं पढ़ते। वे भी प्रातः काल समाचारपत्र लेकर बैठ जाते हैं। आँखें मलते हुये शौच जाने से पूर्व यह देखने का प्रयत्न करते हैं कि क्या समाचार है। चीन ने क्या किया है। मैं यह नहीं कहता कि पत्र न पढ़ो, अवश्य पढ़ो। परन्तु देखो भाई! पत्र का स्वाध्याय कोई स्वाध्याय नहीं। स्वाध्याय करना है तो वेद, उपनिषद् और दूसरे उत्तम ग्रन्थों का पाठ करो। बहुत नहीं कर सकते तो एक मन्त्र पढ़ो, आधा मन्त्र पढ़ो। प्रतिदिन पढ़ो।

शतपथ ब्राह्मण का ऋषि कहता है—

"जो व्यक्ति सारी पृथिवी को स्वर्ण, चान्दी, हीरे और जवाहरात से भर कर दान दे दे उसे उतना पुण्य नहीं मिलता जितना प्रतिदिन स्वाध्याय करने वाले को मिलता है।"

देखो कितना सस्ता सौदा है यह । यह अरबों मील में फैली हुई पृथिवी बहुत बड़ी है । इसको हीरे जवाहरात से ढक दे इतनी सम्पत्ति किसी के पास नहीं है। यदि कोई कमाना चाहे तो उसे कई जन्म लग जायेंगे तब जाकर वह दान करेगा । दान करने के पश्चात् उसे फल मिलेगा उतना ही जितना कि उस व्यक्ति को मिलेगा जो प्रतिदिन स्वाध्याय करता है।

बोलो भाई ! इसके पश्चात् भी स्वाध्याय न करो तो इस से बढ़ कर भाग्यहीनता और क्या है ? और फिर शतपथ ब्राह्मण का ऋषि आगे चल कर एक और बात कहता है, मनुष्य का यह जीवन है न इसमें कई बार मनुष्य ऐसे दोराहे पर खड़ा हो जाता है जहाँ उसे पता नहीं होता कि किस मार्ग पर जाना चाहिए। ब्राह्मण का ऋषि कहता है—"स्वाध्याय करने वाले को यह दुविधा कभी उत्पन्न नहीं होती । उसे स्वयमेव ठीक मार्ग मिलता है । अपने रोग की चिकित्सा वह स्वयं कर लेता है, किसी के पास उसे जाना नहीं पड़ता। उसके जीवन में मिठास आती है, सफलता आती है, वह आगे बढ़ता जाता है।"

यह है स्वाध्याय का फल।

परन्तु जैसा मैंने कहा आजकल तो तीनों विश्वविद्यालय बिगड़ गये हैं। इन से उत्तम विचार मिल सकते थे। उत्तम विचारों से दृढ़-संकल्प हो सकता था। दृढ़-संकल्प से सफलता मिल सकती थी। हमने सारा क्रम ही चौपट कर रक्खा है, तब सफलता मिलेगी कैसे ?

इस विषय पर और भी बहुत कुछ कहा जा सकता है परन्तु मुझे तो आपको उपनिषदों का सन्देश सुनाना है। उपनिषदों के रहस्य बताने हैं। अतः इस पर अधिक बल नहीं देता केवल यह कहना चाहता हूँ कि उत्तम संकल्प और उत्तम विचारों पर वे

भगवान् ने भी बल दिया है। यजुर्वेद के ये छः मन्त्र तो आपने भी सुने होंगे। आज उन्हें पुनः सुनिये—

ओ३म् यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥
(यजु० ३४।१।६)

हे प्रभो! हे अन्तर्यामिन्! ऐसी कृपा कर कि हमारा यह मन कल्याण भरे संकल्प वाला हो। यह मन, जो जागता हुआ बहुत दूर दूर जाता है और सोया हुआ भी दूर तक जाता है, जो शरीर की इन्द्रियों में इस भाँति चमकता है, इस प्रकार शक्तिशाली जैसे आकाश के ग्रह नक्षत्रों में सूर्य, कृपा कर प्रभो! हमारे इस मन को शुभ संकल्प वाला बना दे।

यह मन जिस से कर्मयोगी और मुनि लोग, जिस से ज्ञान योगी और यज्ञशील कितने ही शुभ कर्मों का अनुष्ठान करते हैं। यह मन जो अद्वितीय है, जो सब इन्द्रियों को चलाता है, कृपा कर स्वामिन्! हमारा यह मन शिवसंकल्प वाला हो जाये।

यह मन जो सच्चे और ऊँचे ज्ञान को प्राप्त करने का साधन

है, जिसमें स्मरण शक्ति है, जो दीपक की भाँति स्वयं भी प्रकाशित रहता है, प्रत्येक वस्तु को भी प्रकाशित करता है; जिसके विना कोई भी कर्म नहीं हो सकता, ऐसी कृपा करो प्रभो कि मेरा यह मन सुन्दर संकल्पों वाला हो जाये।

यह मन जिससे आत्मा की संगति में यह सारा बीता हुआ, आज का और आने वाला जाना जाता है—भूत, भविष्य और वर्तमान, जो ब्रह्मा की भाँति शरीर में बैठ कर सब इन्द्रियों के द्वारा आत्मा के इस शरीर यज्ञ को चलाता है, कृपा करो प्रभो! मेरे इस मन के संकल्प उत्तम हों।

यह मन जो ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद के मन्त्रों के बीच, इन्हें स्मरण करके इस प्रकार बैठ जाता है जैसे रथ के पहिये में अरे लगे हों, जिसमें सभी लोगों और सभी वस्तुओं का ज्ञान इस प्रकार पिरोया जाता है जैसे माला के धागे में मोती पिरोये जाते हैं, कृपा करो अन्तर्यामिन्! मेरे इस मन को शिवसंकल्प वाला बना दो।

यह मन जो विद्वानों और विचारवान् लोगों को यूँ पथ-प्रदर्शन करता है जैसे कोई अच्छा सारथी तेज और शक्तिशाली घोड़ों को अपने वश में करके चलाता हो। जो हृदय में बैठा है, जो कभी बूढ़ा नहीं होता और जो बहुत शीघ्रगामी है मेरे इस मन को अन्तर्यामिन्! हे मेरे हृदय में बैठे हुए भगवान्! कल्यण भरे संकल्प वाला बना दो।

यह है वेद का शिवसंकल्प सूक्त। इस पवित्र सूक्त की महिमा इस समय मुझे नहीं कहनी। केवल यही बताना है कि वेद भगवान् भी बार-बार संकल्प के शिव होने पर, विचारों के उत्तम होने पर बल देता है।

क्रतुमयः पुरुषः।

ऐसा उपनिषद् ने कहा है। मनुष्य अपने विचारों का बना हुआ

है। जैसे विचार मेरे मन में होंगे वैसा ही मैं बन जाऊँगा, वैसा ही मेरा संसार बन जायेगा। यह बात विचित्र सी प्रतीत होती है परन्तु है सत्य। जो विचार आप के मन में उत्पन्न हुआ वह केवल आप पर नहीं सारे संसार पर प्रभाव डालता है।

यह मत समझिये कि केवल वाणी से निकला हुआ शब्द ही दूसरों पर प्रभाव डालता है। मन का विचार भी दूसरों पर प्रभाव डालता है। सात कोठड़ियों के भीतर अपने आपको बन्द करके बैठिये। एक विचार निकालिये। तब यह विचार आगे बढ़ेगा। बन्द कोठड़ियाँ उसे रोक नहीं सकतीं। पानी में फेंका हुआ कंकड़ जिस प्रकार पानी में लहरें उत्पन्न करता है, यह लहरें किनारे तक पहुँचती हैं। वहाँ से दूसरी लहर का रूप धारण करके वापस आती हैं। इसी प्रकार मन का विचार जब प्रत्येक स्थान पर फैले हुए आकाश या ईथर से टकराता है तो उसमें भी लहरें उठती हैं। जहाँ जहाँ इस लहर जैसा मन है वहाँ जाकर वह चोट करती हैं। उसका हृदय पर प्रभाव होता है। यह बात आज के वैज्ञानिक भी मानते हैं, जो मनोविज्ञान के विशेषज्ञ हैं, वे भी कहते हैं, एक व्यक्ति केवल अपने विचार से दूर बैठे हुए व्यक्ति के विचार को बदल सकता है। परन्तु ये सब सूक्ष्म बातें हैं। इन्हें पूर्ण रूपेण वर्णन करूँ तो आप समझ नहीं पायेंगे। केवल यह मोटी बात समझिये कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर रिसीवर (Receiver) है, जो विचार को लेता है। एक ट्रांसमीटर भी है, जो विचारों को बाहर भेजता है। यहाँ से सूचनाएँ जाती हैं यहाँ आती भी हैं।

स्वर्गीय महात्मा हंसराज जी एक कथा सुनाया करते थे वह यहाँ पर बिल्कुल ठीक बैठती है। एक बृद्धा स्त्री थी भारी सी गठड़ी उस के सिर पर। चली जाती थी अपने ग्राम से किसी दूसरे ग्राम की ओर। चलते चलते थक गई। तभी उसने एक व्यक्ति को देखा जो घोड़े पर बैठा वेग से चला जाता था। उसे देख कर बुढ़िया ने आवाज

दी, "अरे ओ बच्चा ! ओ घोड़े वाले ! एक बात तो सुन।" घोड़े वाले ने सुना यह देखने के लिए रुक गया कि बुढ़िया क्या कहती है। घोड़े को रोक कर बोला, "क्या बात है माई !" वृद्धा ने कहा "पुत्र ! मुझे उस सामने वाले ग्राम में जाना है। थक बहुत गई हूँ यह गठड़ी मुझ से उठाई नहीं जाती। तू भी उधर जा रहा है यह गठड़ी घोड़े पर रख ले तो मुझे सरलता हो जाये।" अश्वरोही ने कहा, "माई तू है पैदल, मैं हूँ घोड़े पर। ग्राम अभी काफी दूर है पता नहीं तू कब तक वहाँ पहुँचेगी। मैं अभी पाँच मिनट के पश्चात् वहाँ पहुँच कर आगे चला जाऊँगा तब मैं क्या तेरी प्रतीक्षा करता रहूँगा।" यह कह कर वह चला गया। परन्तु अभी दो ही फर्लांग गया था तो उसके मन ने कहा, "तू भी विचित्र मूर्ख है। वह वृद्ध स्त्री ! शीघ्र चल भी नहीं सकती। तुझे गठड़ी देती थी। गठड़ी में कोई मूल्यवान् वस्तु भी हो सकती है। उसे लेकर तू चला जाये तो तुझे पूछने वाला कौन ? चल वापस उससे गठड़ी ले ले।" अब देखिए कि एक व्यक्ति का विचार दूसरे के मन पर कैसे प्रभाव डालता है अश्वारोही वापस आया। वृद्धा के पास पहुँच कर बोला, "अच्छा माई ! ला दे दे अपनी गठड़ी। मैं ले चलता हूँ उस ग्राम में पहुँच कर तेरी प्रतीक्षा करूँगा।" वृद्धा ने कहा, "न बच्चा ! अब तू जा ! मुझे गठड़ी नहीं देनी है।" घुड़सवार ने कहा, "अरे अभी तो तू कह रही थी कि गठड़ी ले चल, अब ले चलने को तैयार हुआ तो तू कहती है कि गठड़ी नहीं देती। यह उलटी बात तुझे किसने समझाई है ?" वृद्धा मुस्करा कर बोली, "उसने समझाई है बच्चा ! जिसने तुझे समझाया कि माई की गठड़ी ले ले। जो तेरे भीतर बैठा है, वही मेरे भीतर भी बैठा है। तुझे उसने कहा कि गठड़ी ले ले और भाग जा। मुझे उसने समझाया कि गठड़ी नहीं देना नहीं तो भाग जायेगा। अब तू जा भाई ! मैं अपनी गठड़ी स्वयं ही ले जाऊँगी।"

इस प्रकार एक मन का विचार दूसरे मन के विचार पर प्रभाव डालता है। अतः भूल कर भी मन में खोटा विचार न आने दो। इस विचार का प्रभाव अपने पर ही नहीं अपितु दूसरों पर भी होगा। किसी भी समय गिरने की, हारने की, पीछे हटने की बात मत सोचो। विजय की, ऊपर उठने की, आगे बढ़ने की बात सोचो।

मन के हारे हार है मन के जीते जीत।
पार ब्रह्म को पाइये मन के ही प्रतीत॥

मन के द्वारा मनुष्य परब्रह्म को भी पा सकता है। इसमें बहुत बड़ी शक्ति है। अभी मैंने आप के सामने छः मन्त्र रक्खे न। उनमें से एक मन्त्र है—

येनेदं भूतं भुवनं..............

इस मन्त्र का भावार्थ बताते हुए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने यजुर्वेद भाष्य में लिखा है कि 'जिस व्यक्ति ने अपने चित्त को अर्थात् मन को योग के साधनों और उपसाधनों से सिद्ध कर लिया है वह भूत भविष्यत् और वर्तमान् की प्रत्येक घटना को जान लेता है।' योग दर्शन के विभूति पाद में ऐसी कितनी ही सिद्धियों का वर्णन मिलता है। अतः मन को सम्भालो भाई! इसे बिखरने न दो। यह बहुत बड़ी शक्ति है इसे नष्ट न होने दो।

उपनिषद् ने तो मन को ब्रह्म कह दिया है। इसलिए मैंने भी इस पर बहुत बल दिया। उपनिषद् का पहला सन्देश इस मन के सम्बन्ध में है। इस में दृढ़ सङ्कल्प उत्पन्न करो। अच्छे विचार उत्पन्न करो तो सफलता मिलेगी अवश्य।

परन्तु आप कहेंगे अच्छा बाबा! दृढ़ सङ्कल्प पैदा कर लिया, उत्तम विचार बना लिया परन्तु इसके पश्चात् क्या करें? इस दृढ़-सङ्कल्प और उत्तम विचार से क्या करें? सुनिये, इस का उत्तर है उपनिषद् का दूसरा सन्देश। उपनिषद् का पहला सन्देश है—

ऋतुमयः पुरुषः ।

मनुष्य अपने विचारों का बना है। और दूसरा सन्देश है—

अन्नं बहु कुर्वीत ।

बहुत सा अन्न उत्पन्न करो। स्मरण रक्खो उपनिषद् के आत्मा परमात्मा की बातें नहीं करते अपितु प्रत्येक उस बात वर्णन करते हैं और उपदेश देते हैं जिस से मानव जीवन सुखी सके। इसीलिए उपनिषद् ने कहा—

अन्नं बहु कुर्वीत तद्व्रतम् ।

अन्न को बहुत इकट्ठा करे। ऐसा व्रत ले ले। फिर आगे कर कहा—

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत तद्व्रतम्। तस्माद् यया क विद्यया बह्वन्नं प्राप्नुयात् ।

बहुत अन्न उत्पन्न करे, ऐसा व्रत ले ले। फिर किसी भी अ को अपने घर से खाली न जाने दे अथवा जो अतिथि घर में रहने लिए आया है उसे मना न करे और इसलिए जिस किसी भी से हो बहुत अन्न प्राप्त करे।

परन्तु अन्न का अर्थ केवल 'अनाज' नहीं। अनाज तो एक अ इस शब्द का। इसके अतिरिक्त अन्य अर्थ भी हैं। प्यारी वस्तु, वस्तु जिसकी हम इच्छा करते हैं। ऐसी वस्तु जो रक्षा करने है, सुख देने वाली है। अन्न का अर्थ है धन सम्पत्ति वैभव, शक्ति प्रत्येक वह पदार्थ जो सुख देने वाला है।

दूसरे शब्दों में उपनिषदों का सन्देश यह है कि सुख देने वस्तुओं को एकत्रित करो और थोड़ी नहीं, प्रभूत संग्रह करो।

स्मरण रखिये उपनिषद् कपड़े उतार कर वन में चले जाने में राख डाल कर धूनी रमा लेने की बात नहीं कहता।

वैराग्य की शिक्षा नहीं देता अपितु कर्म करने की शिक्षा देता है। वह तो स्पष्ट शब्दों में कहता है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।

सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर। सौ वर्ष तक जीवित रह। परन्तु किस प्रकार, क्या हाथ पर हाथ धर कर ? निकम्मा बन कर ? नहीं।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि।

कर्म करता हुआ जी, पुरुषार्थ करता हुआ, परिश्रम करता हुआ, पसीना बहाता हुआ जी। धन कमा, बहुत सा धन कमा। परन्तु—

आप कहेंगे चलो छुट्टी हो गई। अब किसी दूसरी बात की आवश्यकता तो है नहीं। किसी प्रकार से धन कमाओ यही जीवन का आदर्श है।

परन्तु भूलो नहीं मेरे भाई ! ऐतरेय उपनिषद् की भृगु वल्ली के जो शब्द मैंने अभी आपके समक्ष पढ़े—

अन्नं बहु कुर्वीत

उसमें केवल यही आज्ञा नहीं कि बहुत धन इकट्ठा कर अपितु यह भी आज्ञा है कि अतिथि के लिए संग्रह कर। अपने लिए नहीं दूसरों के लिए संग्रह कर।

ईशोपनिषद् के पहले मन्त्र में इस बात को बहुत सुन्दरता से कहा गया है।

तेन त्यक्त्येन भुञ्जीथाः

'भुंजीथा' शब्द आज्ञा का है। इस में सम्मति नहीं, प्रार्थना नहीं, अपितु आज्ञा है। भोग करो, प्रयोग करो। यह जो कुछ भी है संसार में, तेरे लिए बनाया गया है, इसका प्रयोग कर। इस से मुख मोड़कर भूख हड़ताल करके न बैठ जा।

'भुञ्जीथा' इस शब्द के रहस्य को समझिये। इसका अर्थ यह कि जब आज्ञा दी जाती है कि 'प्रयोग कर' तब कोई प्रयोग करने वाला तो चाहिये। यदि कोई प्रयोग करने वाला ही नहीं तो प्रयोग करने की आज्ञा किस को दी जायेगी। इसके साथ ही इस का यह अर्थ भी है कि जिनका प्रयोग हो सके ऐसी वस्तुओं का होना भी आवश्यक है। यदि प्रयोग होने वाली वस्तुएँ ही न हों तो 'प्रयोग कर' ऐसा सुनने वाला प्रयोग किस का करेगा। इस एक शब्द से ईश्वर ने कह दिया कि यह जो कुछ संसार में है, ये कारखाने, मिलें, ये क्षेत्र, ये उद्यान, ये पर्वत, ये नदियाँ, सागर, मैदान, सब तेरे लिए हैं। धन संगृहित कर, कारखाने बना, व्यापार कर, राज्य बना, शासन की शक्ति प्राप्त कर, ये सब प्रयोग करने के लिये हैं, परन्तु करेगा कौन?

खाने की बहुत सी वस्तुएँ पड़ी हों तो उन्हें खायेगा कौन? वही तो खायेगा जिसे भूख लगी हो। जिसे भूख ही नहीं, जिसकी पाचन शक्ति बिगड़ गई हो वह खायेगा क्या?

एक बार मैं महात्मा हंसराज जी के साथ कलकत्ता गया। एक बहुत बड़े करोड़पति सेठ के यहाँ हम ठहरे। भोजन का समय हुआ तो सेठ साहब के साथ हम भी भोजन के लिए बैठे। मेरे और महात्मा जी के लिए सुन्दर थालियों में कितनी ही वस्तुएँ भोजन की आईं। परन्तु सेठ जी के लिए जो कुछ आया उसे देखकर मैं चकित रह गया। चाँदी के थाल में चाँदी की एक बड़ी कौली थी। उस में पीला सा पानी था। और उसके साथ केवल एक छोटा सा शुष्क फुलका। सेठ जी उस फुलके को धीरे धीरे खाते रहे। दूसरी कोई भी वस्तु उनके लिए आई नहीं उन्होंने खाई नहीं।

भोजन समाप्त हो गया तो मैंने कहा, "सेठ जी! एक बात समझ नहीं पाया।"

वे बोले 'क्या' ? मैंने कहा आप की थाली चाँदी की थी, कटोरी भी चाँदी की परन्तु उस थोड़े से पीले पानी और एक शुष्क फुलके के अतिरिक्त आप ने कुछ भी खाया नहीं। क्या आप वास्तविक भोजन कर चुके थे या अब करेंगे ?

सेठ साहब ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा, "यही मेरा भोजन है। इस के अतिरिक्त और कुछ खाऊँ तो पचता नहीं।" मैंने कहा, "प्रातः दूध तो पीते होंगे ?" वे बोले, "नहीं, दूध से पेट में वायु हो जाती है।"

मैंने कहा, "दही तो खाते होंगे उस से वायु नहीं होती।" वे बोले, "नहीं, मैंने कभी दही खाया नहीं। मेरे छोटे भाई ने एक बार खाया था उसे जुकाम हो गया।" मैंने कहा, "लस्सी तो पीते होंगे ?" वे बोले, लस्सी तो कभी हम ने ट्राई (Try) नहीं की।"

मैंने कहा, "फल तो खाते होंगे ?"

वे बोले, "ना भाई ! फल मुझे अनुकूल नहीं आते।"

मैंने कहा, "बादाम, छुआरे, मुनक्का, किशमिश, ये तो खाते होंगे ?"

वे बोले, "ना, ये तो गर्म होते हैं।"

मैंने कहा, "पिस्ता ?"

वे बोले, "हे भगवान् ! ये तो बहुतग र्म होते हैं।"

मैंने कहा, "संखिया (जहर) ?"

वे आश्चर्य से बोले, "संखिया किस लिए ?"

मैंने कहा, "अब और तो कुछ खाने के लिए रहा नहीं।"

अब बताओ मेरे भाई ! कि इस धन का क्या लाभ हुआ ? स्वयं खा नहीं सकते, दूसरों को देते नहीं। ऐसा धन तो धन है नहीं। धन वह है कि यदि मेरे पास धन है तो देश के नवयुवकों को बुला कर

कहूँ, "देखो ये दूध और घी के मटके हैं, ये बादाम हैं, इन्हें खाओ। यह तेल का मटका है, इसे अपने शरीर पर मालिश करो। स्वस्थ और बलवान् बनो, और जब कोई शत्रु तुम्हारे देश पर आक्रमण करे तो उसकी हड्डियाँ चकना चूर कर दो। लड़ो, लड़ते लड़ते मर जाओ, पीछे न हटो।"

यह है धन का ठीक उपयोग।

परन्तु ये लोग न तो स्वयं खाते हैं, न दूसरों को खाने देते; जोड़ जोड़ कर मर जाते हैं। ऐसे लोग भोग नहीं कर सकते, भोग वह करता है जिसके शरीर में शक्ति है।

परन्तु शरीर में शक्ति कैसे आती है ? यह भी सुनिए।

शरीर में शक्ति आती है तोन बातों से—पहली शुद्ध आहार, सादा, सात्विक शक्ति देने वाला भोजन। घी खाओ, दूध पियो, मक्खन खाओ। परन्तु अब तो दूध घी की बात ही समाप्त हुई जा रही है। सब लोग डालडा ब्राण्ड बने जाते हैं। मुझ से एक व्यक्ति ने शारीरिक दुर्बलता की शिकायत की तो मैंने कहा, "अरे देखो मैं ७६ वर्ष का हो गया हूँ अभी तक दौड़ता हूँ। पहाड़ों पर चढ़ जाता हूँ। मानसरोवर हो आया। गङ्गोत्री तो कई बार गया और तू ४५ वर्ष की आयु में ही निर्बलता का रोना रोता है।" उसने कहा, "आपने असली घी खाया है स्वामी जी ! और हम तो डालडा ब्राण्ड हैं।" सचमुच आजकल के सब वच्चे डालडा ब्रांड हुए जाते हैं। इस प्रकार शरीर में शक्ति नहीं आयेगी। शरीर की शक्ति के लिए सब से पहली और आवश्यक वस्तु है शुद्ध आहार।

तब दूसरी आवश्यक वस्तु है—निद्रा। ऐसी निद्रा जिसमें कोई चिन्ता नहीं, कोई स्वप्न नहीं, जिसमें समय से पूर्व कोई जागना नहीं। परन्तु आजकल तो चिन्ताएँ ही मनुष्य का पीछा नहीं छोड़तीं। कितनी ही चिन्ताएँ हमने लगा रक्खी हैं। लड़की वालों को लड़

की चिन्ता, लड़के वालों को लड़की की। शैशव में शिक्षा की चिन्ता है। शिक्षा मिल गई तो नौकरी की चिन्ता। नौकरी मिल गई तो यह चिन्ता कि ऊपर नीचे से आय में वृद्धि किस प्रकार हो ? इस प्रकार तो अच्छी नींद नहीं आती मेरे भाई ! निद्रा कहती है "मेरे पास आना है तो अकेले आओ, भीड़ लेकर न आओ।" परन्तु हम तो चिन्ताओं का जलूस लेकर उनके पास पहुँच जाते हैं। फिर वह आयेगी कैसे ? इधर चारपाई पर लेटे अथवा भजन में बैठे उधर चिन्ताओं की घटायें उमड़ उमड़ कर आने लगीं। ऐसी निद्रा तो निद्रा नहीं मेरे भाई ! निद्रा वह है जो अत्यन्त गाढ़ हो। जिसमें कोई स्वप्न न हो। कुछ व्यक्ति प्रातः उठते हैं तो कहते हैं, "थका हुआ हूँ।" कोई पूछे तुम सोये सोये कैसे थक गये ? क्या रात्रि में उठकर चलते रहे ? दौड़ते रहे ? तो सत्य बात यह है कि ये लोग वस्तुतः दौड़ते और चलते रहते हैं। ये स्वयं पड़े रहते हैं खाट पर, इन का मन दौड़ता रहता है। जागृत अवस्था में शरीर की जो बैटरी खाली होती है गाढ़ निद्रा में वही फिर से भर जाती है। ये लोग गाढ़ निद्रा में गये ही नहीं तो फिर इनकी बैटरी भरेगी किस प्रकार ? और बैटरी नहीं भरेगी तो फिर थकावट तो होगी ही। विश्रान्ति कभी आयेगी नहीं। ऐसी निद्रा नहीं अपितु गाढ़ निद्रा शरीर की शक्ति को बढ़ाती है।

और तीसरी वस्तु है—ब्रह्मचर्य। जो खाया है, जो पिया है उससे शरीर में रस बनता है। यह रस अमृत है। इसे नष्ट न कर। इसे नष्ट करेगा तो स्मरण रख, इस लोक में या परलोक में कहीं भी तेरा कल्याण नहीं होगा।

इन तीन बातों से शरीर में शक्ति आती है। शक्ति से ही संसार को भोगा जा सकता है, संसार की वस्तुओं का प्रयोग किया जा सकता है।

वेद भगवान् जब 'भुञ्जीथा' कह कर आज्ञा देता है तो इस का

अर्थ भी यही है कि अपने अन्दर भोगने की शक्ति उत्पन्न कर फिर भोग। यह संसार तेरे लिये बनाया है।

परन्तु 'भुञ्जीथा' से पूर्व एक और शब्द है। 'त्यक्तेन-भुञ्जीथा' अर्थात् भोग करो अवश्य, प्रयोग करो इन वस्तुओं का परन्तु त्याग से भोग करो। आप कहेंगे यह नया कौतुक हुआ। भोग भी कर त्याग भी कर। दोनों बातें साथ-साथ कैसे हो सकती हैं ? परन्तु सुनो भाई ! त्यागपूर्वक भोग करने का अर्थ यह है कि भोग कर अवश्य संसार की वस्तुओं का प्रयोग कर परन्तु उनमें फँस न जा।

ज्यूं जल भीतर पदम है, जल में डूबे नाहीं।
ज्ञानी जग में रहत भी लिप्तमान हो नाहीं॥

यह है त्याग पूर्वक भोगने का अर्थ। जल में रहो परन्तु जल में डूब न जाओ। धन कमाओ। वस्तु संग्रह करो, परन्तु त्याग के लिए ऐसा करो। त्याग का अर्थ है, विभक्त करना, दान करना, बाँटना संस्कृत में इसे 'वितरण' करना कहते हैं। यह जो वैतरणी नदी की बात आप सुनते हैं ना ! जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि उसे पार करके ही व्यक्ति स्वर्ग में पहुँचता है, वह क्या है ? यही बांटना, दे देना, दान देना। दान दिये विना सुख प्राप्त होना असम्भव है। वेद भी कहता है।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य।

(ऋ० १०।११७।६)

जो व्यक्ति अन्न को संग्रह करके अकेला खा जाता है उसके लिए वेद भगवान् कहता है कि वह विष खाता है। वह आत्महत्या कर रहा है। 'सत्यं ब्रवीमि' मैं सत्य कहता हूँ इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं। और फिर मनु जी महाराज ने भी कहा—

दानमेकं कलौ युगे।

कलयुग में स्वर्ग और मुक्ति पाने का सब से बड़ा साधन है दान। कई लोग पूछते हैं कि आनन्द स्वामी! यह आसन, प्राणायाम, यम नियम तो बहुत कठिन हैं और ये प्रत्याहार, धारणा, ध्यान समाधि और भी कठिन हैं। क्या ईश्वर को पाने का कोई सरल मार्ग नहीं ? तो सुनो मेरे भाई! सरल मार्ग भी है।

दानमेकं कलौ युगे ।

दान करो। ऐ धनिको! अपना दूसरों को दो, जहाँ वह समाज के काम आये। इस की स्थिर निधियाँ (Fixed Deposit) न बनाते जाओ। ये फिक्स डिपोजिट रहेंगे नहीं। कोई उन्हें रहने नहीं देगा। अपनी आवश्यकताओं को कम करो। बढ़ाओ नहीं। थोड़ी वस्तुओं में निर्वाह करने का स्वभाव बनाओ। योग की भाषा में इस को अपरिग्रह कहते हैं। अर्थात् संग्रह न करना। अँग्रेजी में जिसे Hoarding कहते हैं वह न करना। पाँच धोतियों और पाँच कुर्तों में यदि निर्वाह होती है तो पाँच ट्रंक एकत्रित करने का लाभ क्या है? ये ट्रंक साथ तो जायेंगे नहीं। अन्त में यहीं रह जायेंगे। तब इनके लिए अपने आप पर और मन पर बोझ क्यों डालते हो।

आई अजल[1] तो आप अकेले चले गये ।

अन्त में तो सब कुछ छोड़ कर चले जाना है। पहले किसी को एक वस्तु भी देना नहीं चाहता। जब मृत्यु आती है तो एक भी वस्तु को साथ नहीं ले जा सकता—

आई अजल तो आप अकेले चले गये ।
घर में जमा था सब कुछ मगर कुछ न ले गये ॥

आज तक कोई ले नहीं गया। आपके मोहल्ले में या ब्लाक में कोई ले गया हो तो मुझे बताओ। नहीं, आज तक कोई लेकर नहीं गया। कोई लेकर नहीं जा सकता। यह सब कुछ यहीं रह जाता है।

---
१. मृत्यु

पाकिस्तान बनने से पूर्व एक दिन मैं मुलतान से आगे जा रहा था। डेरा इस्माईल खाँ पहुँचना था। दरिया से नौका में बैठ कर नदी को पार करना था। गाड़ी जा रही थी बहुत तेज। तभी बहुत जोर से धक्का लगा। कई लोग अपनी सीटों से नीचे आ गिरे। गाड़ी रुक गई। गाड़ी के रुकते ही कई लोग शोर मचाने लगे, टक्कर हो गई। मैं भी नीचे उतरा। इंजन की ओर चला यह देखने कि टक्कर किस वस्तु से हो गई है। कुछ लोग मुझ से पूर्व इञ्जन के पास हो आये थे। उन से मैंने पूछा, "क्या हुआ ?" तो वे बोले, रेल की लाइन पर पहाड़ आकर बैठ गया है।" मैंने आश्चर्य से कहा, "पहाड़ कैसे आकर बैठ गया है ?" उन्होंने कहा, "स्वयं जाकर देखो ! रेत का पहाड़ रेल की पटड़ी पर बैठा है।" और मैंने वहाँ जाकर देखा कि वस्तुतः रेत का एक ऊँचा टीला पटड़ी के ऊपर है। चकित होकर मैंने कहा, "यह टीला पटड़ी के ऊपर आ गया है या कि पटड़ी नीचे चली गई है ?" वहाँ उस प्रदेश के कुछ लोग भी थे। उन्होंने कहा, पटड़ी टीले के नीचे नहीं, टीला पहाड़ी के ऊपर आ गया है। यह रेतीला प्रदेश है। तीव्र आँधी चलती है तो रेत के पहाड़ उड़ने लगते हैं। उड़ते-उड़ते कभी कभी पटड़ी के ऊपर आ बैठते हैं।" मैंने पूछा, "क्या वर्ष भर ये पर्वत इसी प्रकार उड़ते रहते हैं ?" उन्होंने बताया, "नहीं जब वर्षा हो जाये तब नहीं उड़ते। तब रेत भी नहीं उड़ती।" उस समय मुझे शास्त्र की बात स्मरण आई कि यह धन रूपी पहाड़ उड़ने वाला है। एक स्थान पर बहुत समय नहीं रहता। दान रूपी वृष्टि इस पर हो जाये तो फिर नहीं उड़ता।

ओ धनिको ! दान की वर्षा करो इस धन पर। नहीं तो स्मरण रक्खो कि यह पर्वत उड़कर कहीं अन्यत्र चला जायेगा। यह उड़ने वाला पर्वत है।

और फिर मरने वाले का सब से बड़ा मित्र भी दान ही है। दिया हुआ दान उस के साथ जाता है। दबाया हुआ तो कभी जाता नहीं।

स्थिर निधि और भवन भी नहीं जाते। इसलिये वेद भगवान् ने कहा, "त्याग से भोग कर।"

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा।

'त्यक्त' शब्द का अर्थ घर बार छोड़ कर, लोक कल्याण के लिये संन्यासी या वानप्रस्थी वन जाना भी है। इसलिए उपनिषद् कहता है कि धन अवश्य कमा, परन्तु त्याग के लिए कमा। बहुत अधिक संग्रह न कर, बहुत स्थिर निधि न बना।

साँई इतना दीजिये जा में कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूं साधु न भूखा जाय॥

इतने ही धन की मनुष्य को आवश्यकता होती है। जो इस से अधिक संग्रह करता है वह बोझा ढोता है। अतः उपनिषद् ने जहाँ यह कहा कि—

अन्नं बहु कुर्वीत

बहुत अन्न संग्रह कर, बहुत धन एकत्रित कर, वहाँ यह भी कहा—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः!

धन से मनुष्य की कभी तृप्ति नहीं होती।

नचिकेता गया महर्षि यम के पास। महर्षि ने कहा, "वर माँग।" नचिकेता ने कहा, "मैं आत्मा का ज्ञान चाहता हूँ।" यम ने उसे बहुत प्रलोभन दिये, कहा, "धन ले ले, राज्य ले ले, दीर्घायु ले ले, हीरे, मोती, जवाहर, भोग विलास के सामान ले ले।" नचिकेता ने कहा, "नहीं यम महाराज! मुझे वह सब कुछ नहीं चाहिये। धन सम्पत्ति से मनुष्य की तृप्ति नहीं होती। मुझे तो आत्मा का ज्ञान चाहिये।"

देहली के किसी युवक से यम महाराज ऐसी बात कहते तो वह कहता, ठीक कहते हो यम महाराज! आत्मा और परमात्मा का ज्ञान

लेकर मुझे करना क्या है। मुझे नई दिल्ली में चार पाँच कोठियां दे दो। छः सात करोड़ रुपये की स्थिर निधि दे दो। मेरे लिये यही पर्याप्त है। यदि यह नहीं दे सकते तो बहुत सी नक्टाइयाँ और कुछ पतलूनें ही दे दो।

और यदि नई दिल्ली की देवियाँ पहुँच जातीं यम के पास तो कहतीं, "हमें 'नाइलोन' के कुछ दुपट्टे ही दे दो।"

परन्तु नचिकेता जानता था इन सब की वास्तविकता। उसे पता था कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। देखो यदि धन से तृप्ति हो जाती तो ये अमेरिका वाले क्या तृप्त न हो जाते? ये चीन वाले क्या सन्तोष करके न बैठते? फिर क्या ये हमारे पर्वतों की चोटियों पर अधिकार करने का प्रयत्न करते? नहीं मेरे भाई! धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। इसलिए नचिकेता ने कहा—

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।

परन्तु उपनिषद् केवल यही तो नहीं कहता कि बहुत सा धन उपार्जन कर और त्याग के लिए कर। केवल यही नहीं कहता कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। अपितु यह भी कहता है—

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्।

धन का लोभ न कर। किसी दूसरे का धन छीनने का प्रयत्न न कर।

इन सब बातों का तात्पर्य क्या है? यह कि धन प्राप्त करो, शुभ कार्यों में खर्च करो और इस बात को मत भूलो कि धन से किसी की तृप्ति नहीं होती। धन आवश्यक है। संसार का कार्य इसके बिना चलता नहीं। इस लिए इसे कमा अवश्य, संग्रह भी कर, परन्तु त्याग के लिए एकत्रित कर।

और यह धन कितना आवश्यक है इसके सम्बन्ध में आपको एक निजी घटना सुनाता हूँ। मैं जब संन्यासी बना तो संकल्प किया कि

अपनी जेब में एक पैसा भी नहीं रक्खूंगा। तब एक नगर में गया। उसका नाम नहीं लेता। रात्रि के ग्यारह बजे तक वहाँ भाषण देता रहा। प्रातःकाल मुझे दूसरे स्थान पर जाना था अतः भाषण के पश्चात् मैंने मन्त्री जी से कहा, "मन्त्री जी! मुझे प्रातः काल चार बजे की बस से जाना है।" वह बोले, "हाँ स्वामी जी! मुझे स्मरण है। मैं स्वयं प्रातः आपको बस पर बिठा आऊंगा।" मैंने कहा, "आप की निद्रा खुल जायेगी?" वह बोले, "वाह, भला निद्रा कैसे नहीं खुलेगी?" मैं प्रातः उठा बिस्तरा बाँधा। बैठ गया। मन्त्री जी नहीं आये। रात्रि में देर से सोये प्रातः नींद नहीं खुली। अन्त में मैंने समाज के सेवक से कहा, "भाई! मेरा बिस्तरा उठा कर बस के अड्डे पर ले चल मुझे अड्डे का पता नहीं। वह बिस्तर लेकर चला। मैं अड्डे पर पहुँच गया। पहले समाज मन्दिर में बैठा था अब अड्डे पर बैठ गया। टिकट लेने के लिये मेरे पास पैसे नहीं थे। बस आई, चली गई, मैं बैठा रहा। तब दूसरी बस आई। वह भी चली गई मैं बैठा रहा। तब तक कुछ प्रकाश हो गया। इस प्रकाश में डी० ए० वी० स्कूल के हेड मास्टर महोदय ने मुझे वहाँ देखा। मेरे पास आकर बोले, "स्वामीं जी! आप यहाँ पर बैठे हैं, क्या बस पर जायेंगे?" मैंने कहा, "जाना तो है।" उन्होंने कहा, "फिर टिकट ले आऊं।" मैंने लम्बा सांस खींच कर कहा, "ले आओ अवश्य।" तब तीसरी बस पर मैं चढ़ा और तभी से मैंने निर्णय किया कि जेब में कुछ पैसे होने चाहिये अवश्य। धन के विना साधु का कार्य भी नहीं चलता।

और जब मैं गङ्गोत्री गया तो देखा कि इस धन की बड़े-बड़े योगियों को, महात्माओं और सन्तों को भी आवश्यकता रहती है। वे भी देखते रहते हैं कि कब कोई अहमदाबाद अथवा बम्बई का सेठ आये और रुपया दे जाये। इच्छानुसार रुपया न मिले तो रूठ भी जाते हैं। गङ्गोत्री में एक बहुत बड़े महात्मा थे, बहुत सज्जन साधु।

अब उनका देहान्त हो गया। ३२ वर्ष वे मौनी बन कर रहे, एक शब्द भी बोले नहीं। यह उनका तप था। गङ्गोत्री में भी साढ़े दस सहस्र फुट की ऊँचाई पर वे बिल्कुल नग्न रहते थे। चारों ओर बर्फ और एक भी कपड़ा वे नहीं पहनते थे। कम्बल भी नहीं लेते थे। एक बार एक सेठ जी वहाँ आये। उन्होंने अपने सेवकों को कहा—'जितने भी साधु गङ्गोत्री में हैं सब को एक-एक सौ रुपये दे दो। उस मौनी ने यह बात सुनी तो रूठ गये। उन्होंने सौ रुपये लेना अस्वीकृत कर दिया। मैंने उन से पूछा तो उन्होंने संकेत में बताया कि 'यह क्या सेठ है, जो कल के छोकरे साधु हैं उन्हें भी सौ रुपये देता है और मैं जो ३२ वर्ष से मौन धारण किये हुए हूँ, मुझे भी सौ रुपये। मैं नहीं लूँगा इस का दान।" सेठ ने मुझे बुलाया और कहा, "महात्मा को प्रसन्न कसे करें ?" मैंने कहा, "एक ही उपाय है। जो दूसरों को दिया है इन्हें उससे दुगुना दो।" सेठ जी ने मौनी बाबा को दो सौ रुपये दिये तो वे प्रसन्न हो गये।

नहीं भाई ! इस माया के बिना साधु का कार्य भी बनता नहीं। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में एक साधु सम्मेलन हुआ। बम्बई के एक सेठ जी इस सम्मेलन का प्रबन्ध कर रहे थे। मुझे भी उन्होंने बुलाया। मैं उस समय तो जा नहीं सका परन्तु बाद में बम्बई गया तो ज्ञात हुआ कि सेठ जी रुग्ण हैं। उन्हें देखने गया तो उनसे साधु सम्मेलन की बात भी पूछी। उन्होंने बताया कि सम्मेलन बहुत सफल हुआ। लगभग पचास साधु इस में सम्मिलित हुए। कई दिन तक उपदेश होते रहे जो भी साधु उठता वह माया की निन्दा करता। यही कहता कि यह माया ठगनी है। इसके जाल में मत फँसो।

मैंने कहा, "सेठ जी ! साधु लोग ऐसे ही उपदेश तो देते हैं, इस के अतिरिक्त वे और क्या कहते ?"

सेठ जी बोले "सुनो तो सही, सम्मेलन समाप्त हुआ। साधुओं के जाने का दिन आया तो जिस साधु को हम ने कम पैसे दिये उस का

मुंह सूज गया। धन का नया इंजेक्शन करने पर ही यह सूजन ठीक हुई। धन की गठढ़ियाँ भर भर कर वे लोग ले गये।"

अव मैं हूँ साधु। मुझे साधुओं का पक्ष लेना था। मैंने कहा, सेठ जी! ये धन और माया तो हतभाग्य है न। वे आपको इस से मुक्ति दिलाने का प्रयत्न कर रहे थे। आपके ऊपर कृपा कर रहे थे।" तो साधु भी धन के विना नहीं रहता। संसार का कोई कार्य धन के विना नहीं होता।

मैं उत्तर काशी में 'तत्त्वज्ञान' नाम की एक पुस्तक लिख रहा था। एक सज्जन को मैंने लिखा कि "मैं 'तत्त्वज्ञान' लिख रहा हूँ।" उन्होंने उत्तर में एक पत्र भेजा। उसने लिखा कि पता नहीं तुम कौन से तत्त्व की वात लिख रहे हो। संसार में आजकल एक ही तत्त्व रह गया है और वह है 'धन तत्त्व'। यदि तुम उसके सम्बन्ध में लिख रहे हो तो ठीक है यदि किसी दूसरे तत्त्व के सम्बन्ध में लिख रहे हो तो व्यर्थ है। इसके साथ ही उन्होंने एक श्लोक भी लिख कर भेजा। वह आपको सुनाता हूँ—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः
स पण्डितः श्रुतवान् गुणज्ञः ॥
स एव वक्ता स च दर्शनीयः
सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

अर्थात् जिसके पास धन है वही इस संसार में उत्तम कुल वाला है। वही पण्डित है, वही विद्वान् है, वही गुणों को जानने वाला है, वही उत्तम भाषण देने वाला है, वही देखने योग्य है। संसार के सभी गुण सोने में अर्थात् धन में छिपे रहते हैं। आजकल तो ऐसी ही वात है।

परन्तु उपनिषद् कहता है, "यह ठीक नहीं। धन उपार्जन करो अवश्य परन्तु उसमें फंस न जाओ। कमाओ परन्तु अकेले न खाओ।

त्याग से भोग करो। यह उपनिषद् का दूसरा संदेश है।

और तीसरा संदेश है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥
(कठो० २।२४)

चाहे तुम कितना भी धन कमा लो। कितने ही विद्वान् वन जाओ। चाहे कितनी ही भाषाएं सीख लो। कितनी ही डिग्रियाँ प्राप्त कर लो, कितने ही शास्त्र पढ़ लो। वेदपाठी भी बन जाओ परन्तु यदि तुम्हारा चरित्र उत्तम नहीं तो सुनो! सुनो! ऐ संसार के लोगो! तुम्हारा मूल्य दो कौड़ी भी नहीं।

और आजकल यह चरित्र ही सब से तुच्छ वस्तु बन गई है। स्कूल में अध्यापक महोदय ने हमें एक कविता लिखाई थी—

When wealth is lost nothing is lost.
When health is lost something is lost.
When character is lost everything is lost.

अर्थात् धन चला गया तो समझो कोई हानि नहीं हुई। स्वास्थ्य गया तो समझो कुछ हानि हुई और यदि चरित्र चला गया तो समझो सब कुछ समाप्त हो गया है।

अब यह कविता उलटे ढंग से पढ़ाई जाती है—

When character is lost nothing is lost.
When health is lost something is lost.
When wealth is lost everything is lost.

चरित्र चला गया तो कुछ नहीं गया, साधारण बात है। जाने दो इसे। स्वास्थ्य चला गया तो कुछ हानि हुई अवश्य परन्तु धन चला गया तो सब कुछ चला गया। अब विनाश ही विनाश है।

परन्तु यह सब कुछ उलट हो गया है। जो सबसे ऊपर था वह

सब से नीचे आ गया है। जो सब से नीचे था वह सबसे ऊपर पहुँच गया है।

परन्तु आज की रीति हो या कल की यह उचित तो नहीं है। सत्य यह है कि जो व्यक्ति अपने चरित्र को खो बैठता है उसका कोई मूल्य नहीं रहता भले ही वह आज सुखी दिखाई देता हो, उसके पास धन सम्पत्ति सब कुछ हो, परन्तु स्मरण रक्खो उसके भीतर वाला उसे चैन से नहीं बैठने देगा। चोरी का विचार यदि मन में आया है तो उसका दण्ड मिलेगा अवश्य। रात्रि के समय स्वप्न आयेगा कि मैं चोरी करके भागा हूँ, पीछे दूसरे लोग भागे आते हैं। हाँपता काँपता भागा चला जाता हूँ और धड़ाम से एक अंधे कुएँ में जा गिरा हूँ। यह है मानसिक पाप का मानसिक दण्ड जो अन्दर वाला देता है। अतः उपनिषद् ने कहा उत्तम चरित्र वाला बन। ऐसा नहीं करेगा तो कितना भी विद्वान् क्यों न हो तेरे मन को शांति नहीं मिलेगी। तेरा मन कभी ईश्वर में नहीं लगेगा। यह है उपनिषद् का तीसरा सन्देश।

और चौथा सन्देश वह है जिससे वास्तविक उपनिषद् आरम्भ होता है। दृढ़-संकल्प कर लिया। उत्तम विचार बना लिये। धन उपार्जन कर लिया, त्याग से उसका भोग कर लिया, अपने चरित्र को भी पवित्र बना लिया तो इसके पश्चात् क्या करना। इसके पश्चात् उपनिषद् क्या कहते हैं? यहाँ से वास्तविक उपनिषद् आरम्भ होता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी को सम्बोधित करके कहा—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति यजते।
तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राणि अन्तवदेवास्य तद् भवति॥

(बृहदा० ३।८।१०)

सुनो गार्गी ! सुनो गार्गी ! यह अक्षर जो कभी नष्ट न होने वाला

है इसको जाने विना कोई व्यक्ति कई सहस्र वर्ष तक भी यज्ञ करता है और तप करता है उसका यह सब कुछ अन्त में नष्ट होने वाला है क्योंकि इनमें से किसी का फल भी सदा रहने वाला नहीं। यह है उपनिषद् का चौथा सन्देश।

परन्तु यह "अक्षर कभी नाश न होने वाला" है क्या ? यह किस बला का नाम है। यहाँ से उपनिषद् का वास्तविक सन्देश आरम्भ होता है परन्तु अब तो समय हो गया पूरा इसलिए इसका वर्णन कल करेंगे।
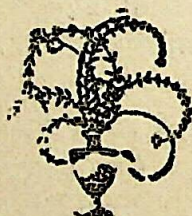
चौथा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

कल मैं उपनिषद् के वास्तविक तत्त्व का वर्णन कर रहा था। उपनिषद् का पहला सन्देश यह है कि दृढ़ संकल्प वाले वनो। दूसरा सन्देश यह है कि दुरितों के लिए दृढ़-संकल्प न करो, श्रेष्ठ कर्मों के लिए करो। इसके लिये अपने में सुविचार उत्पन्न करो। तीसरा सन्देश यह है कि धन का, अन्न का प्रभूत अर्जन करो—

अन्नं बहु कुर्वीत, अन्नं, अन्नं न निन्द्यात्।

बहुत अन्न उत्पन्न करो, अन्न की निन्दा न करो। अन्न का अर्थ प्रत्येक वह वस्तु है जो सुख देती है, जो प्यारी है, जिसकी हम कामना करते हैं। धन, सम्पत्ति, शक्ति, शासन सभी अन्न हैं। उपनिषद् कहता है कि बहुत अन्न उत्पन्न करो। बहुत धन कमाओ क्योंकि धन के विना मनुष्य का कोई भी कार्य चलता नहीं। तब उपनिषद् का चौथा सन्देश यह है कि धन, सम्पत्ति, शक्ति और शासन प्राप्त करो अवश्य, परन्तु अपने लिये नहीं, दूसरों के लिये।

त्यक्तेन भुञ्जीथा

त्याग से भोग करो। जो दीन और दुःखी हैं, रोगी हैं और सहायता चाहते हैं उनकी सहायता के लिये अर्जित धन को खर्च करो। यही धन की सफलता है। धन कमाओ अवश्य परन्तु उसमें फंस न जाओ। उपनिषद् का पाँचवाँ सन्देश यह है कि यदि संकल्प दृढ़ है, विचार शुभ हैं, धन संग्रह कर लिया है, उसे दूसरों के भले के लिए खर्च भी कर लिया है तो स्मरण रक्खो यदि तुम्हारा चरित्र अच्छा नहीं तो तुम्हारा मूल्य दो कौड़ी भी नहीं। चरित्र निर्माण करो, चरित्र बनाओ यह उपनिषद् का पाँचवाँ सन्देश है।

परन्तु ये सब बातें कहने के पश्चात् मैं आपको उपनिषद् का वास्तविक संदेश सुना रहा था। यह वह सन्देश है, जिसको उपनिषदों का वास्तविक तत्त्व (निचोड़) कहना चाहिए। आपका संकल्प दृढ़ है, विचार उत्तम हैं, धन कमा कर, चरित्र का निर्माण कर परोपकार कर रहे हैं, यज्ञ कर रहे हैं, गुरुकुल, अस्पताल, अनाथालय, स्कूल, कालिज, कुएँ, तालाब बनवा रहे हैं परन्तु इस वास्तविक तत्व को आपने नहीं जाना, यदि उपनिषद् के वास्तविक उपदेश को नहीं समझा और उसे क्रियात्मक रूप से जीवन में नहीं अपनाया तो उपनिषद् कहता है कि आपका सब कुछ करना व्यर्थ है, क्योंकि यह सब का सब नष्ट होने वाला है।

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिंल्लोके जुहोति, यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राणि, अन्तवदेवास्य तद् भवति।

सुनो गार्गी! यह जो अक्षर है उसको जाने बिना जो व्यक्ति इस संसार में यज्ञ करता है, तप करता है, कई सहस्र वर्ष तक करता है, उसका यह सब नाश होने वाला है। इन में से कुछ भी स्थायी नहीं।

इससे आगे चल कर महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणः। य एतदक्षरं गार्गि, विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः॥

सुनो गार्गी! यह जो अक्षर है न, इसको जाने बिना जो व्यक्ति संसार से चला गया समझो कि वह बहुत घाटे में रह गया। उसकी अवस्था दयनीय है, वह दया का पात्र है। और जो इस अक्षर को जानने के पश्चात् संसार से गया, वही ब्राह्मण है, वही विद्वान् है, उसीके सम्बन्ध में कहना चाहिए कि वह सब कुछ जानता है।

और फिर दूसरे उपनिषद् में कहा है—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः॥

वह अक्षर यहीं, इसी संसार में जाना जा सकता है, यदि इसे नहीं जाना तो समझो बहुत बड़ा विनाश हो गया।

कठोपनिषद् का ऋषि भी यही कहता है—

य इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥

सुनो भाई ! यदि मरने से पूर्व इस शरीर में ही अक्षर को जान लिया तो ठीक, नहीं तो कई कल्प तक शरीर को धारण करना पड़ेगा। आवागमन के इस चक्र से छुटकारा नहीं मिलेगा।

और फिर प्रजापति ने भी तो यही घोषणा की थी। दूसरे ऋषियों ने भी तो यही कहा कि मानव शरीर में ही 'अक्षर' को जाना जा सकता है। यदि उसे जाने विना यह शरीर छूट गया तो समझो कि वहुत वड़ा घाटा हो गया क्योंकि मानव शरीर ही वह शरीर है जिसमें परमात्मा ने आत्मा को अधिकार दिया है कि वह अक्षर को जाने। दूसरे किसी शरीर में यह अधिकार है नहीं, दूसरे शरीर में यह वात नहीं हो सकती। कहते हैं चौरासी लाख योनियाँ हैं। अब पूरे चौरासी लाख हैं अथवा कम या अधिक यह तो किसी ने देखा नहीं परन्तु ८४ लाख हों या ८४ करोड़ एक वात बिल्कुल निश्चित है कि आत्मदर्शन कर्मभोग के लिए है।

सुनो ! एक था विचारा सूरदास। ऐसे दुर्ग में फंस गया जिस में भयानक अग्नि जल रही थी। कितने ही भयानक पशु वहाँ चिल्ला रहे थे। एक ओर यह झुलसा देने वाली गर्मी, दूसरी ओर इन भयानक पशुओं की गर्जना और दहाड़। विचारे सूरदास ने प्रयत्न किया कि दुर्ग से वाहर निकले। परन्तु जिधर भी वह जाता उधर का द्वार उसे बन्द मिलता। ८४ लाख द्वार थे वहाँ परन्तु बेचारे सूरदास को एक भी द्वार खुला नहीं मिला। भय और कष्ट से घवरा गया। चिल्ला कर वोला, "अरे कोई मुझ पर दया करो, वताओ कि इस दुर्ग में कोई द्वार खुला भी है या नहीं ?"

एक और व्यक्ति ने उसकी अवस्था देखी। उसके पास जाकर कहा, "सूरदास ! ८४ लाख द्वार हैं यहाँ केवल एक खुला है।" सूरदास ने विनयपूर्वक पूछा, "कौन सा द्वार ?" उस व्यक्ति ने कहा, "वह सामने वाली दीवार में है परन्तु बहुत दूर। तुझे दिखाई देता नहीं। इधर से उस द्वार तक पहुँच न पायेगा। मेरे साथ आ। मैं तेरा हाथ इस दीवार पर रख देता हूँ। इसको छूता हुआ चला जा। जहाँ खुला द्वार आयेगा, वहाँ से बाहर चले जाना।" उस व्यक्ति ने सूरदास का हाथ रख दिया दीवार पर। सूरदास चलने लगा। परन्तु उसे खुजली की बीमारी थी। बार बार खुजली उठती। वह खुजलाता और चलता जाता था। और जब खुले द्वार के पास पहुँचा तो पुनः खुजली जाग उठी। दीवार से हाथ उठा कर वह खुजाता हुआ आगे बढ़ गया फिर ८४ लाख द्वारों के चक्र में पड़ गया।

आपको इस विचारे सूरदास पर दया आती है। मन ही मन आप सोचते हैं कितना अभागा है वह। परन्तु सोचो मेरे भाई ! क्या अपने आप पर दया नहीं कर सकते, अरे हम भी तो उस सूरदास की भाँति हैं। ८४ लाख योनियों के चक्र में पड़े हैं। ८४ लाख बन्द द्वार हैं यहाँ। दुःखों कष्टों की अग्नि जल रही है यहाँ। पाप ताप के पशु दहाड़ रहे हैं। केवल एक द्वार खुला है—यह मानव योनि। किसी ज्ञानी ने कृपा करके कहा—इस द्वार से बाहर निकल जाओ। परन्तु हाय रे अभागे ! इस खुले द्वार के समीप पहुँच कर तेरे अन्दर तृष्णा, विषयवासना की खुजली जाग उठती है, दीवार से हाथ उठा कर तू खुजलाने लगता है, खुजलाता हुआ आगे बढ़ जाता है और फिर वही ८४ लाख का चक्कर।

उस बेचारे अन्धे पर दया करते हो अपने आप पर नहीं कर सकते। कब तक भटकते रहोगे इस दुर्ग में जहाँ दुःख ही दुःख है, कष्ट ही कष्ट। यह मानव शरीर तुम्हारे समक्ष है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार की ख़ुजली में फंस गये तो द्वार फिर निकल जायेगा

और यह निकल गया तो 'महती विनष्टि' बहुत बड़ा विनाश होगा। यह बात है जो महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी को कही।

परन्तु तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि द्वार है तो इस से बाहर कैसे जायें? किस से पूछें कि इस खुले द्वार से बाहर कैसे जाया जायेगा?

महफिले हस्ती में किस से यार का पूछूँ पता।
शमा[1] भी खामोश है, परवाना[2] भी खामोश है॥

किस से पूछूँ मुक्ति का मार्ग! जो लोग ऐसा प्रश्न पूछते हैं, जो इस जलते हुए दुर्ग से बाहर जाना चाहते हैं, उनके लिए उपनिषद् का ऋषि कहता है—

उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति॥

उठो! जागो! जाओ उन लोगों के पास जो आत्मा को जानते हैं, उनसे परमात्मा को जानने का मार्ग मिलेगा। परन्तु स्मरण रक्खो! यह मार्ग सरल नहीं। बहुत कठिन है यह मार्ग। बहुत साहस एवं धैर्य से इस पर चलना पड़ता है—

जो तोहे प्रेम करन का चाव।
सिर धर तली गली मोरी आओ॥

सिर देना पड़ता है इस सौदे में, क्योंकि "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया।" यह मार्ग ऐसा है जैसे उस्तरे की तीक्ष्ण धार हो। उस धार के ऊपर चलना जिस प्रकार कठिन है उसी प्रकार यह मार्ग भी कठिन है। जो जानते हैं वे भी कहते हैं कि बहुत कठिन मार्ग है यह। यहाँ मन को मार देना पड़ता है, वासना को समाप्त कर देना पड़ता है। बुद्धि को निर्मल बनाना पड़ता है।

१. दीपक २. पतंग।

परन्तु इस मार्ग के सम्बन्ध में गुरु से पूछने की बात केवल कठोपनिषद् ने ही नहीं कहीं। मुण्डक उपनिषद् ने भी कही है। मुण्डक का ऋषि कहता है—

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।

इस अक्षर के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु गुरु के पास जाये। विज्ञान का अर्थ है आत्मा का ज्ञान। और इस विज्ञान को प्राप्त करने के लिए किस प्रकार जायें? क्या अकड़ कर? अभिमान के साथ? संसार भर की चिन्ताओं को और चञ्चलता को साथ लेकर। नहीं, उपनिषद् कहता है—"समित्पाणिः" हाथ बाँध कर हाथ जोड़ कर। हाथों में गुरु के लिये भेंट लेकर।

इसी मुण्डक में आगे चल कर ऋषि कहता है—

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय॥

अर्थात् गुरु जिस को ब्रह्म विद्या का ज्ञान दे उसे अच्छी प्रकार शान्त चित्त होना चाहिए। उसके मन में शान्ति होनी चाहिये चञ्चलता नहीं। इस प्रकार गुरु के पास जाये। परन्तु कौन से गुरु के पास "श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्।" जो वेद को जानने वाला है, वेद का विद्वान् है और जो स्वयं ब्रह्म में रहता है। आत्मा और परमात्मा को केवल पुस्तकों के ज्ञान से नहीं, अपने अनुभव से जान चुका है, ऐसे गुरु के पास जाये।

यह तो हम सब कहते हैं कि गुरु विना ज्ञान नहीं, परन्तु आज कल गुरु को पहचानना ही कठिन हुआ जाता है। दुकानें बहुत हैं साइन बोर्ड बहुत लगे हैं, इन में से ठीक गुरु कौन है इसका जानना साधारण व्यक्ति के लिये कठिन हुआ जाता है।

उपनिषद् ने कहा गुरु वह है जो वेदों का विद्वान् हो और ब्रह्मनिष्ठ हो। परन्तु ब्रह्मनिष्ठ कौन है यह कैसे पता लगे? सीधी सी बात है आत्म-दर्शन का मार्ग वही बता सकता है जिस ने स्वयं

आत्म-दर्शन किया हो। गँगोत्री का मार्ग वह बता सकता है जो स्वयं गंगोत्री गया हो। मैं बहुत बार गंगोत्री गया हूँ। एक एक नदी, एक एक घाटी, एक एक पर्वत मुझे ज्ञात है। यदि कोई मुझ से पूछे तो मैं कहूँ—"भाई मेरे! रेल गाड़ी में बैठ कर ऋषिकेश जा। ऋषिकेश से धरासू तक बस जाती है। दिन भर वह चलती है। धरासू से आगे ७४ मील पैदल चलना होगा। धरासू से १८ मील आगे उत्तर काशी है। उससे १८ मील आगे भटवारी। उससे नौ मील के अन्तर पर गंगनानी, तब नौ मील परे सुक्की, उससे तीन मील आगे झाला, फिर तीन मील आगे हरशल। हरशल से दो मील आगे धराली और तब तेरह मील आगे गंगोत्री। जा चला जा इस मार्ग से। परन्तु यदि मैं गंगोत्री गया ही नहीं तो उसे बताऊँगा क्या? यदि सचाई से अपने अज्ञान को स्वीकार न करूँ तो इधर उधर की गप्पें मार कर उसे भूलभुलैयाँ में डालूँगा। रोब जमाने के लिए कह दूँगा यहाँ से कलकत्ते जा। कलकत्ते से हाँगकाँग जाके टोक्यो पहुँच। वहाँ से वायुयान द्वारा सानफ्राँसिस्को जा, वहाँ से न्यूयार्क पहुँच तब लन्दन, पैरिस और इस्तम्बोल से होकर स्वेज में पहुँच। वहाँ से लालसागर को पार करके अरब सागर में आके बम्बई तक आ। वहाँ से रेल में बैठ कर ऋषिकेश पहुँच।" तो बताओ उस बेचारे का तो हो गया कूँडा। सारा संसार घूम आया, गंगोत्री तक पहुँचा नहीं! ऐसे गुरु का लाभ नहीं।

गुरु में तीन गुण होने चाहिये—

> **गुरु मिला तब जानिये मिटे मोह सन्ताप।**
> **हर्ष शोक व्यापे नहीं तब गुरु अपने आप॥**

पहला यह कि यदि आप उसके पास जा बैठे हैं और उसकी बात सुन रहे हैं तो आप का जी चाहे कि उसके पास ही बैठे रहें। जी चाहे कि वह बातें कहता ही रहे। ऐसा गुण उस में है तो समझो कि उसने अपनो विद्युत या चुम्बक शक्ति को बहुत दृढ़ बना लिया है।

उसके भीतर से लहरें निकलती हैं और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर खेंचती हैं यह पहला चिह्न है।

दूसरा चिह्न और गुण यह है कि उसकी जिह्वा उसके वश में हो। यह जिह्वा बहुत भयानक है। बहुत गिराती है मनुष्य को। इस पर अधिकार प्राप्त करना भी बहुत कठिन है। नाम नहीं लेता परन्तु एक प्रान्त के एक मन्त्री महोदय हैं। बहुत विद्वान् हैं। वे राजनीति के बहुत अच्छे पण्डित, कितने ही देशों के विधान उन्हें कण्ठस्थ हैं परन्तु अवस्था यह है कि उन की जिह्वा उनके वश में नहीं। अब मन्त्री हैं वे। थोड़ी बहुत शान भी रखनी पड़ती है। पद का ध्यान भी रखना पड़ता है। परन्तु उन की दशा यह है कि बाजार में चलते-चलते भी अगर किसी गोल गप्पे वाले को देख लें तो शान और पद सब कुछ उन्हें भूल जाता है। वहीं मोटर को खड़ा करके, सड़क पर बैठ कर, पत्ते के दोने में गोल गप्पे खाना आरम्भ कर देते हैं। आलू और पकोड़ियों से भरे गोलगप्पे और वह मिर्चों वाला खट्टा पानी—अब तो आप के मुँह में भी पानी आने लगा होगा परन्तु उन मन्त्री महोदय की दशा आप से भी हीन है। वे यह भी भूल जाते हैं कि कहीं व्याख्यान देने जाना है या किसी भवन का उद्घाटन करना है। बस गोल गप्पे ही उनको ध्यान में रहते हैं।

परन्तु सुनो! यह चटोरी जिह्वा बहुत हानि पहुँचाती है। पिछले दिनों एक भाई ने इन्हीं मन्त्री महोदय की बात सुनाई। खाते खाते पेट खराब कर लिया है उन्होंने। मधुमेह, हृदय की धड़कन, अपचन कितनी ही व्याधियाँ हो गई हैं उन्हें। डाक्टरों ने उन्हें आज्ञा दे दी है कि उबली हुई सब्जियों के अतिरिक्त कुछ न खाओ। उस में भी साधारण नमक डालो। अब मन्त्री महोदय के स्वागत में प्रीतिभोज होते हैं। लोग अच्छे अच्छे पदार्थ खाते हैं। वे बेचारे अपनी प्लेट में उबली हुई वस्तुएँ देखते हैं, दूसरों की प्लेटों में भाँति भाँति के भोजन तो ललचाई दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति को देखते हैं। एक बार उन

रहा न गया। सामने रसगुल्लों की थाली रक्खी थी। उन्होंने इधर उधर देखा। जल्दी से कुछ रसगुल्ले उठा कर अपनी प्लेट में रख लिये परन्तु अभी खा नहीं पाये थे कि वाडी गार्ड ने आकर हाथ पकड़ लिया, बोला, "मन्त्री महोदय! डाक्टर ने आपको मना कर रखा है।" खिस्याने होकर कहा, "धिक्कार है ऐसे मन्त्रित्व पर, न कोई गोल गप्पे खाने देता है न रसगुल्ले।"

बहुत बुरी वस्तु है यह जिह्वा। हर समय नया स्वाद माँगती है। हर समय चाट माँगती है। इस को रोक सको तो अच्छा, नहीं तो चाट खाओ, माट खाओ। फिर खाट पर लेटे रहो बीमार होकर, स्वास्थ्य तो रहेगा नहीं। इसलिए गुरु को पहचानना हो तो यह भी देखो कि उसने अपनी जिह्वा (रसना) को वश में कर लिया है या नहीं। यदि यह लाल मिर्च, चटनी मटनी, खटनी ही माँगता रहता है तो समझो कि यह साधु नहीं स्वादू है। स्वाद देखता है केवल। ऐसा एक स्वाद देखने वाला साधु चला गया एक माँ के पास। उस ने दूध औटा रखा था। काफी मोटी मलाई उसके ऊपर आ गई थी। साधु ने कहा, "माँ थोड़ा दूध पिला दे।" माँ कटोरे में दूध डालने लगी तो कड़छी से मलाई को पीछे हटा दिया। साधु बोला, "माँ! ओ माँ! यह क्या करती है? मलाई सहित आने दे। साधु को स्वाद से क्या है वह मलाई सहित ही दूध पी लेगा।" नहीं भाई ऐसा व्यक्ति गुरु बनने के योग्य नहीं। गुरु वह हो सकता है जिसे जिह्वा पर अधिकार हो।

और तीसरा गुण जानने के लिये उसके पास तीन चार दिन रहो। उसे देखते रहो कि उसे क्रोध तो नहीं आता। यदि उसे क्रोध आता है तो उठाओ अपना वोरिया बिस्तरा, वापस चले आओ। ऐसा व्यक्ति गुरु बनने योग्य नहीं। गुरु बनने का अधिकारी वह है जिसने अपने मन पर नियन्त्रण कर लिया है। जो व्यक्ति क्रोध करता है वह मन के वश में हो जाता है मन उसके वश में नहीं रहता।

सन्तों में एक दादू भक्त हुए थे न ? एक बार वे भजन करते और लोगों को प्रभु नाम का उपदेश करते हुए एक नगर के निकट पहुंच गये। नगर में नहीं गये। उसके समीप वाले वन में रहने लगे। कई लोग आते, उनसे प्रभु नाम की महिमा सुनते, शान्ति प्राप्त करते और चले जाते। एक दिन नगर के कोतवाल ने उसकी चर्चा सुनी। उसने सोचा, "मैं भी चल कर उनके दर्शन करूँ। उससे शिक्षा ग्रहण करूँ।" सोचा, चढ़ा घोड़े पर चल दिया वन को। परन्तु जंगल में पर्याप्त समय तक इधर उधर देखने पर भी कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दिया। वह और आगे बढ़ा तो एक दुबला पतला सा व्यक्ति मिला जो सड़क पर बैठा था। हाथ में दराँती लिये उस घास को और झाड़ियों को काट रहा था जो सड़क पर उग आई थी। कोतवाल ने घोड़े को उसके पास ले जाकर कहा, "ओ घसियारे ! तुझे पता है कि दादू भगत कहाँ रहते हैं ?"

घास काटने वाला घास काटता रहा। उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कोतवाल ने दूसरी बार अधिक जोर से पूछा, "अरे बोलता क्यों नहीं, मैं दादू भक्त का पता पूछता हूँ। घास काटने वाला फिर नहीं बोला। कोतवाल ठहरा कोतवाल। नगर का स्वामी। गाली बिना वह काम नहीं करता। उसे क्रोध आया तो घोड़े से नीचे उतर कर घास काटने वाले के ५-६ हण्टर मारे। घास काटने वाले के शरीर से रक्त बह निकला। कोतवाल ने गर्ज कर कहा, "अब बोल कि दादू भगत कहाँ रहते हैं ?" घास काटने वाले ने मुस्करा कर उसकी ओर देखा उत्तर फिर भी कुछ नहीं दिया। कोतवाल ने मन ही मन सोचा, "यह तो पागल लगता है। व्यर्थ ही इसके साथ समय नष्ट किया।" यह सोचा पुनः घोड़े पर चढ़ा। आगे चल दिया। थोड़ी दूर पर एक और व्यक्ति उसे मिला वह परली ओर जा रहा था। कोतवाल ने उसे आवाज दी, "ओ जाने वाले !" वह व्यक्ति ठहर गया। कोतवाल ने घोड़े को उसके पास ले जा कर पूछा, "तुझे पता है

इस जंगल में दादू भगत कहाँ रहते हैं ?" उस व्यक्ति ने कहा, "आप-ने पीछे नहीं देखा उन्हें," "मैं तो अभी उन्हें देख कर आया हूँ।" कोतवाल ने कहा, "मैंने तो नहीं देखा उन्हें।" उस व्यक्ति ने कहा, "यह कैसे हो सकता है ? आओ मेरे साथ। बहुत दूर नहीं है वह।" और वापस आकर दूर से घास काटने वाले को दिखाते हुए उसने कहा, "वह देखिये वे हैं दादू भगत।" कोतवाख ने आश्चर्य से कहा, "वह है दादू भगत, जो घास काटता है ?" उस व्यक्ति ने कहा "वही तो हैं दादू भगत।" कोतवाल ने घोड़े को वहीं छोड़ा, नीचे उतरा। भागा उस ओर। जाकर उस व्यक्ति के पांव में गिर पड़ा, जिसे थोड़ी ही देर पूर्व वह लहूलुहान कर गया था। दादू ने माथे पर पट्टी बाँध ली थी। वैसे ही घास काट रहे थे। सड़क को स्वच्छ कर रहे थे। कोतवाल ने क्षमा माँगते हुए कहा, "मुझे क्या पता था कि आप ही दादू भगत हैं, आप तो सड़क को साफ कर रहे थे।" दादू मुस्कराते हुए बोले—"मैं सड़क ही तो साफ करता हूँ। आत्मदर्शन को जाने वाली सड़क बिल्कुल सीधी है। इस पर जब काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहङ्कार की कटीली झाड़ें उग आती हैं तब लोगों के लिए चलना कठिन हो जाता है। बहुत अधिक झाड़ें हो जायें तो मार्ग लुप्त हो जाता है। वह आध्यात्मिक संसार की बात है यह भौतिक संसार की। इस सड़क पर भी झाड़ झंकार बहुत हैं उन्हें दूर कर रहा हूँ जिससे पंथियों को कष्ट न हो।" कोतवाल ने दुःख के साथ कहा, "परन्तु मैं जो आप से पूछता रहा, तो आपने बताया क्यों नहीं कि आप ही दादू भगत हैं ?" दादू हँसते हुए बोले "देखो तुम आये थे गुरु की खोज में। मनुष्य एक साधारण बर्तन भी खरीदता है तो ठोक बजा के देख लेता है तुमने भी मुझे ठोक बजा के देख लिया तो इसमें हर्ज क्या है ?"

यह है गुरु की पहचान। किसी को गुरु बनाना हो तो उसे ठोक बजाकर देख लो कि वह गुरु बनने के योग्य भी है या नहीं। परन्तु

सुनो। ठोकने बजाने से मेरा तात्पर्य यह नहीं कि उस बेचारे को पीटना आरम्भ कर दो। नहीं ठोकने बजाने से मेरा तात्पर्य यह है कि उसे परखो। देखो कि उसमें आकर्षण है या नहीं। उसने अपनी जिह्वा को वश में किया है या नहीं और उसमें क्रोध और लोभ है या नहीं। इसलिए उपनिषद् कहता है "उत्तिष्ठत जागृत" उठो जागो। यह विचित्र बात प्रतीत होती है न। जो व्यक्ति उठ गया है उसके जागने का प्रश्न कैसे उत्पन्न होता है? आप कहेंगे उपनिषद् के ऋषि ने बात अशुद्ध कह दी "जागृत उत्तिष्ठत" कहना चाहिए था, जागो, उठो। परन्तु नहीं उपनिषद् के ऋषि ने बात गलत नहीं कही। उसने जब उठो और जागो कहा तो इसलिए कि उठो और गुरु को खोजो परन्तु जाग कर सावधान होकर करो। संसार में अध्यात्मवाद के नाम पर धोखा बहुत है। लोगों ने बड़े-बड़े साइन बोर्ड लगा रखे हैं। इन बोर्डों के धोखे में आकर कहीं शुद्ध घी के स्थान पर वनस्पति तेल न खरीद लेना। अच्छी प्रकार सोच समझ कर किसी को गुरु बनाना।

इस प्रकार गुरु के सम्बन्ध में निश्चय कर लिया तब क्या होता है? जिज्ञासु जाता है अपने गुरु के पास जैसे नचिकेता महर्षि यम के पास गया था। प्रार्थना करता है कि महाराज मुझे "अक्षर" का ज्ञान दो। जिसके सम्बन्ध में महर्षि याज्ञवल्क्य ने गार्गी से कहा कि इसको जाने बिना जो व्यक्ति सहस्रों वर्ष तक तप, दान और यज्ञ करता है उसका यह सभी नष्ट हो जाता है। कौन है वह अक्षर? उसका क्या रूप है? क्या उसका नाम है? कृपा करके बताइये।

तब यम जैसा गुरु कहता है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्

यह है अक्षर। महर्षि यम ने कहा, "नचिकेता! सब वेद जिसकी व्याख्या करते हैं, सारे के सारे तप जिस की बात बताते हैं, जिसके

इच्छा से योगी और यति लोग ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं उस पद के सम्बन्ध में संक्षेप से कहता हूँ "ओ३म्" है वह।

और कहीं नचिकेता को भ्रान्ति न रहे इसलिए महर्षि यम ने फिर कहा—

एतद्धयेवाक्षरं ब्रह्म एतद्धयेवाक्षरं परम्।
एतद्धयेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥

जो जिसकी इच्छा करता है वही उसको मिल जाता है। और इस बात की प्रतिज्ञा केवल महर्षि यम ने नचिकेता को उपदेश देते हुए नहीं की दूसरे उपनिषदों में दूसरे ऋषियों ने भी यही किया है।

प्रश्नोपनिषद् में महर्षि पिप्लाद से सत्यकाम ने पूछा, "महाराज! यदि कोई भक्त सारा जीवन 'ओ-म्' का ध्यान करता रहे तो मरने के पश्चात् उस 'ओ३म्' के ध्यान के कारण वह किस लोक में पहुँचता है?"

महर्षि पिप्लाद ने कहा, "हे सत्यकाम! ब्रह्म के दो रूप हैं एक पर, दूसरा अपर। यह जो ओंकार है यही पर और अपर ब्रह्म है इसलिए जो इसका सहारा लेता है वह पर और अपर जिस ब्रह्म को भी चाहे पा लेता है।

यह पर और अपर की बात तनिक खोल कर कहनी चाहिए। पर और अपर दो ब्रह्म नहीं हैं। एक ही ब्रह्म के दो प्रकार हैं। अधिक सुन्दर ढंग में एक ही ब्रह्म की दो अवस्थाएँ हैं। 'परब्रह्म' ईश्वर की वह अवस्था है जहां वह प्रकृति से परे अपने आप में अपने ही परम आनन्द में मग्न होकर विद्यमान है। वहाँ प्रकृति नहीं, माया नहीं, माया का कोई खेल नहीं और 'अपर ब्रह्म' ईश्वर की वह अवस्था है जहाँ वह प्रकृति के साथ, उसमें अपनी शक्ति का संचार करता हुआ, माया का खेल रचा कर यह संसार बना कर इसे साक्षी रूप से देखता हुआ विद्यमान है। उपनिषदों और दूसरे आर्ष ग्रन्थों में इस पर और

अपर को विद्या और अविद्या का नाम भी दिया गया है। आज कल की भाषा में हम इसे अध्यात्मवाद और संसारवाद कह सकते हैं। संसार में जो कुछ भी है शक्ति, धन, सम्पत्ति, शासन, आयु, प्रत्येक प्रकार के सुख—ये अपर हैं, और इससे परे आत्मज्ञान, आत्मदर्शन और प्रभु की परमानन्द से भरी गोद में जाकर परम शान्ति और मुक्ति यह पर है।

और उपनिषद् का ऋषि कहता है कि जो भक्त ओ३म् का ध्यान करता हुआ उसे अपने मन और आत्मा में धारण करके इस शरीर को छोड़ता है वह परब्रह्म या अपरब्रह्म दोनों में से जिसको भी चाहे उसे प्राप्त कर लेता है। इसीलिए वेद भगवान् और ईशोपनिषद् ने कहा—

ओम् क्रतो स्मर

'ओम्' इस संसार का रचयिता है। प्रत्येक वस्तु का स्वामी है उसको स्मरण कर। इसलिए महर्षि यम ने नचिकेता को कहा—

एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

इस अक्षर 'ओम्' को धारण करने वाला, इसका ध्यान करने वाला और इसको जानने वाला जो कुछ भी चाहे वही उसको मिल जाता है।

परन्तु जानने का अर्थ क्या है! क्या यह कि आप एक कथा सुनने के लिए आये। वहाँ किसी ने ओम् का वर्णन कर दिया। आपने जान लिया और कह दिया कि मैं जानता हूँ। नहीं यह अक्षर का जानना नहीं। अक्षर को जानने का अर्थ क्या है यह आगे चल कर बताऊँगा। अभी केवल यह सुनिये कि इस अक्षर ओम् को जानने, इसका ध्यान करने से क्या होता है, पर और अपर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है इस से। जो कुछ भी भक्त चाहे वही उसको मिल जाता है। इसी लिए महर्षि यम ने आगे चल कर कहा—

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

सुनो नचिकेता ! और तुम भी सुनो ऐ संसार के लोगो ! यह जो अक्षर ओम् है न—इसी का सहारा सब से बड़ा सहारा है। इसी का सहारा सब से ऊपर ले जाने वाला है इसी सहारे को जान कर भक्त लोग ब्रह्म लोक को प्राप्त कर लेते हैं।

परन्तु प्रश्नोपनिषद् में सत्यकाम ने जब महर्षि पिप्पलाद से सुना कि ओम् का ध्यान करने से मनुष्य को सब कुछ मिल जाता है तो उसने कहा—"महाराज ! आपकी बात सुन ली, समझ भी ली परन्तु यह तो बताइये कि ओम् का जाप-ओम् का ध्यान करना कैसे होगा ?"

महर्षि पिप्पलाद ने कहा, "सुनो सत्यकाम ! यह जो अक्षर ओम् है इसमें तीन मात्राएँ हैं। तीन मात्रा से ही इसका जाप और ध्यान होता है। तीन मात्राएँ हैं अ-उ-म्। परन्तु तीन मात्रा के जाप करने का यह अर्थ नहीं कि पहले 'अ' का जाप करते रहो फिर 'उ' का और तब 'म्' का। नहीं यह अर्थ नहीं। तीन मात्रा से जाप करने का तात्पर्य क्या है? यह भी सुनिए। एक मात्रा से जापका अर्थ है ओम् की स्थूल शरीर के द्वारा उपासना। दो मात्रा से जाप का अर्थ है ओम् की मानसिक उपासना और तीन मात्रा से जाप का अर्थ है ओ३म् की आत्मिक उपासना।

अब यह भी सुनिए कि यह एक, दो और तान मात्रा की उपासना होती किस प्रकार है? एक मात्रा से ओम् की उपासना करने की विधि यह है कि ईश्वर का थोड़ा ध्यान करके, ग्रीवा और कमर को सीधा करके, सुखासन, पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइये। आँखें पूरी नहीं थोड़ी मूँद लीजिये और तब ऊँचे स्वर में ओम् का जाप कीजिये। देखिये मैं आपको यह जाप करके दिखाता हूँ। यह शारीरिक जाप है अतः दिखाना कठिन नहीं। ओम् को आरम्भ कीजिये

तो इस प्रकार कि 'ओ' की ध्वनि आप के हृदय से आरम्भ होती तब ऊपर ले चलिये इस ध्वनि को—ऐसा अनुभव कीजिये कि संसार में, मैदानों में, खेतों में, मकानों, पर्वतों, मेघों, चन्द्रमा सूर्य से ऊपर तारों सितारों एवं महासौर मण्डलों से भी परे तक प्र वस्तु इस ध्वनि से भरपूर होती जाती है। जहाँ भी यह ध्वनि चती है वहीं ईश्वर है वहीं उसकी शक्ति तब शनैः शनैः इस ध्व को नीचे लाइये और 'म्' बोलते समय हृदय में समाप्त कर दीजि

देखिये इस प्रकार—

[और उन्होंने नेत्रों को अर्धनिमीलित करके पण्डाल को, ब की सड़कों को, समीप के मकानों को गुंजाती हुई ऊंची ध्वनि 'ओ—म्' का जाप आरम्भ कर दिया। कितने ही लोग उनके बोलने लगे। कितने ही व्यक्तियों ने ऐसा अनुभव किया कि वातावरण इस ध्वनि से भरपूर हो उठा है और पूज्य स्वामी जी कहा—]

इस प्रकार ओम् का जाप कीजिये। यह एक मात्रा के जाप एक विधि है। दूसरी विधि यह है कि ओष्ठ और जिह्वा मत हि इये। नाक से जैसे गुनगुनाया जाता है इसी प्रकार ओम् उच्चारण कीजिये।

इस प्रकार एक मात्रा के जाप से मनुष्य लोक में जो कुछ भी वह सब आपको मिलेगा। धन, सम्पत्ति, भवन, शक्ति, शासन, प वार, बेटियाँ, बेटे, मोटरें, घोड़े, हाथी आदि।

कई सुनने वाले कह रहे होंगे, चलो भाई अब तो आनन्द हो ग यह जाप तो बहुत सरल है। कर लेंगे यह जाप और फिर सम्पत्ति, शासन और शक्ति सब कुछ मिलेगा। परन्तु सुनो इत सरल नहीं है यह कार्य। ऋषि कहता है कि एक मात्रा के जाप मनुष्य-लोक की प्रत्येक वस्तु मिलेगी परन्तु इस शर्त

साथ मिलेगी कि पहले अपने अन्दर तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा उत्पन्न करो। तप का अर्थ है शारीरिक साधना। ब्रह्मचर्य का अर्थ है मानसिक साधना और श्रद्धा का अर्थ है आत्मिक साधना। शरीर मन और आत्मा को ईश्वर के अर्पण करके ओम् की एक मात्रा का स्थूल शरीर से जाप करो! तो धन सम्पति शक्ति और शासन प्रत्येक वस्तु मिलेगी। न मिले तो मैं उत्तरदायी। यह है एक मात्रा से जाप करने की विधि।

अब दो मात्रा के जाप करने की विधि सुनिये। एक मात्रा से जाप करने का अर्थ है स्थूल शरीर से जाप करना। दो मात्रा से जाप करने का अर्थ है स्थूल शरोर को भूल कर उसके शरीर के भीतर जाकर, सूक्ष्म शरीर में पहुँच कर वहाँ बाहर के ओष्ठ अथवा जिह्वा को हिलाए बिना हृदय में ओम् का जाप कीजिये।

इस शरीर में—बिल्कुल इसी रूप का पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच प्राण, पाँच तन्मात्राओं, मन और बुद्धि १७ वस्तुओं का एक अंगूठे जितना सूक्ष्म शरीर है। इसे अंगुष्ठ शरीर भी कहते हैं। परन्तु अंगूठे के जितना या अंगुष्ठ शरीर कहने का यह अर्थ नहीं कि आप इन आँखों से उसे देख सकते हैं। दिखाई नहीं देता वह। सूक्ष्म शरीर है। हृदय के भीतर रहता है। ध्यान के द्वारा इसमें प्रविष्ट होकर ओम् का जाप करना ही दो मात्रा का जाप है। इस जाप से, इस प्रकार ओम् की उपासना करने से मन को शान्ति मिलती है। सभी चिन्ताएँ सभी प्रकार के मानसिक कष्ट, क्लेश, दु:ख, संकट सब दूर हो जाते हैं। ऋषि कहते हैं कि दो मात्रा के जाप से भक्त 'सोम लोक' में पहुँच जाता है। सोम लोक का अर्थ है चन्द्रमा। चन्द्रमा से मन का सम्बन्ध है। चन्द्रलोक में पहुँचने का अर्थ यह है कि मन में शीतलता और शान्ति आ जाती है और इस शन्ति के कारण सर्व प्रकार की चिन्ताओं और कष्टों से मुक्ति पाता हुआ मन इस प्रकार चमक उठता है जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा चमकता हो।

इसके पश्चात् तीन मात्रा के जाप की विधि यह है कि दो मात्रा का जाप करते समय जिस प्रकार स्थूल शरीर को भुलाया था उसी प्रकार अब सूक्ष्म शरीर को भी भुला दो। स्थूल शरीर नहीं सूक्ष्म शरीर नहीं, सूक्ष्म शरीर के भीतर आत्मा बैठा है, उसके साथ परमात्मा। आत्मा को परमात्मा से मिला दो। तब ओम् का जाप करो। ध्यान लगा कर अनुभव करो कि हृदय में स्वयंमेव यह जाप हो रहा है। आत्मा परमात्मा में मिल गया है। इसके मिलाप से ओम्—ओम् की ध्वनि गूँज रही है। ध्यान लगाने पर यह ध्वनि सुनाई देगी। इसी को अजपा जाप कहते हैं। प्रयत्न नहीं करना पड़ता स्वयमेव ओम् का जाप होता रहता है। इस प्रकार तीन मात्रा से ओम् की उपासना होती है जिससे आत्मिक आनन्द मिलता है।

यह सब कुछ महर्षि पिप्पलाद ने भक्त सत्यकाम को कहा पर तैत्तिरीय उपनिषद् के ऋषि ने तो कमाल कर दिया। उन्होंने कहा

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिः।

ओम् ही ब्रह्म है। ओम् ही यह सब कुछ है। जो दिखाई देता है सुनाई देता है, सुझाई देता है और जो विद्यमान है ओम् की ही है यह सब। ये मनुष्य और पशु पक्षी, पर्वत और सागर, फूल और पत्ते, वृक्ष और बेलें, ओषधियाँ और ववण्डर, लहलहाते खेत, हुए उद्यान, इनके प्रत्येक पत्ते, प्रत्येक पुष्प, प्रत्येक वस्तु में शक्ति कार्य कर रही है। उसके विना और किसी की शक्ति नहीं

ईशा वास्यमिदँ सर्वम्।

यह सब कुछ यह सारा संसार ईश्वर-मय है, ईश्वर से भरा कोई एक छोटे से छोटा कण छोटे से छोटा अणु परमाणु कोई भी ऐसी नहीं जो उसके विना हो। इसी लिये छान्दोग्य उपनिषद् ऋषि ने कहा—

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत्।

'ओम्' इस अक्षर को गाओ। ऊँची ध्वनि में। यह समझ कर गाओ कि यह सारा संसार, पृथिवी के अणु अणु से लेकर आकाश के अरबों खरबों सूर्यों तक इस का विराट् रूप है। गा कर उपासना करने का अर्थ यह है कि जितना ऊँचा बोल सकते हैं उतना ऊँचा बोलिये, खूब जोर से बोलिये इस प्रकार कि कोई अन्य शब्द सुनाई न दे।

परन्तु तनिक ठहरिये अपने घर में जाकर इस प्रकार पञ्चम स्वर में गाना न आरम्भ कर दीजिये। नहीं तो आपके पढ़ने लिखने वाले बच्चे कहेंगे कि आनन्द स्वामी ने यह क्या संकट उत्पन्न कर दिया हमारे लिये। ऐसे नहीं किसी एकान्त स्थान में। और यदि घर में जाप करना हो तो किसी एकान्त कमरे को वन्द करके 'ओम्' को गा कर उपासना कीजिये।

परन्तु एक बात भूल गया आपको बताना। अभी तीन मात्रा से ओम् की उपासना की बात कह रहा था। उसमें यह बताना भूल गया कि जो व्यक्ति तीन मात्रा से ओम् की उपासना करता है उसे मिलता क्या है? यह संसार तो 'बनियों' का संसार हो गया है। जब तक किसी बात से लाभ न हो तब तक कोई उसे करना ही नहीं चाहता। तो सुनो भाई, लाभ की बात भी सुनो। यह तो मैं आप को बता चुका कि ओम् के जाप से धन सम्पत्ति, शक्ति और शासन, स्वास्थ्य और आयु सब कुछ मिलता है, यह भी बता चुका कि इससे मानसिक शान्ति और आत्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है, परन्तु प्रश्नोपनिषद् में महर्षि पिप्पलाद कहते हैं—जो व्यक्ति इस ओम् नाम को तीन मात्रा से उपासना करता है और उस परम पुरुष, परम देव परमात्मा का ध्यान करता है वह सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है। जैसे साँप केंचुली से छूट जाता है इसी प्रकार वह भक्त, वह साधक या साधिका पाप से मुक्ति पा लेती है। उसके सभी पाप समाप्त हो

जाते हैं। बताओ इससे बड़ी बात भी कोई हो सकती है ? इससे बड़ा लाभ भी हो सकता है ? जन्म जन्म के पाप यदि नष्ट हो जायें तो फिर शेष और क्या चाहिये ।

इसीलिये छान्दोग्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, मुण्डक, प्रश्न और दूसरे सभी उपनिषदों के ऋषियों ने बार बार कहा ओम् का जाप करो, ओम् की उपासना करो। ओम् का ध्यान करो।

ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानम् ।

ओम् के द्वारा आत्मा का ध्यान करो।

गुरु ने जब भक्त से कहा कि आत्मा का ध्यान करो तो कोई भक्त बोल उठा, "महाराज ! आत्मा का रूप नहीं फिर उसका ध्यान कैसे करें ?" तब गुरु ने कहा, "आत्मा का ध्यान ओम् के द्वारा करो।" कितना सरल उपाय है।

कुछ भाई पूछ सकते हैं कि अच्छा आनन्द स्वामी ! आत्मा का ध्यान तो ओम् के द्वारा करें, परन्तु ओम् का ध्यान कैसे करें ? तो सुनिये ओम् के ध्यान की विधि भी बताता हूँ। इस का वर्णन मुण्डक, कठ और श्वेताश्वतर उपनिषद् में भी आया है—

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥

जब पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के साथ निर्मल हो जायें और बुद्धि भी शान्त हो जाये उस अवस्था को ज्ञानी लोग परम गति कहते हैं। इस परम या समाधि की अवस्था में पहुँच कर ही ओम् का ध्यान करना चाहिये।

अब आप कहेंगे कि यह तो नई उलझन आ पड़ी। हमने पूछा था ओम् का ध्यान कैसे करना, तुमने बता दिया कि परम गति में पहुँच कर करो परन्तु अब बताओ कि इस परम गति को कैसे प्राप्त

करें ? तो सुनो मेरे भाई ! उपनिषद् इस परम गति को प्राप्त करने का साधन भी बताता है। पहला साधन है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थिनां विप्रमोक्षः ॥

सुनो सुनो ऐ संसार के लोगो ! ओ बारम्बार शिकायत करने वालो ! तुम जो कहते हो न, कि मन वश में नहीं आता तो इसे वश में लाने का उपाय सुनो ! मन चंचल बहुत होता है परन्तु वह बनता है भोजन से। अपना भोजन शुद्ध कर लो मन वश में हो जायेगा। देखो कि तुम बहुत अधिक लाल मिर्च तो नहीं खाते। बहुत अधिक उत्तेजक पदार्थ तो नहीं खाते। ऐसा करते हो तो छोड़ दो उसे। यह सब से पहला साधन है—आहारशुद्धि।

प्रायः हम कहते हैं कि मन तो बन्दर की भाँति चंचल है परन्तु बेचारे बन्दर की चंचलता इस मन के सामने क्या है। बन्दर जाता है वृक्ष पर, उसकी शाखाओं पर, मकान पर, उसकी दीवारों और छतों पर परन्तु यह मन महाराज अभी यहाँ है, पल भर में कलकत्ता, तब बम्बई, लन्दन, न्यूयार्क, मास्को, शंघाई, रंगून, चन्द्रलोक, सूर्यलोक, मंगल, बृहस्पति, शुक्र, बुद्ध—हे भगवान् ! एक ही क्षण में कहाँ से कहाँ। कभी यह एवरेस्ट की चोटी पर है, दूसरे पल बंगाल की खाड़ी में। इसकी चंचलता का क्या साम्मुख्य ? परन्तु अच्छा मान लीजिए कि वह बन्दर की भाँति ही चंचल है। अब इस उछलते कूदते बन्दर को आप शराब पिला दें, तो उसकी चंचलता बढ़ेगी या घटेगी ? स्पष्ट है बढ़ेगी और इस शराबी बन्दर को बिच्छू काट ले तब ? किस प्रकार तड़पेगा वह। किस प्रकार बेचैन होगा। एक बन्दर, दूसरे शराब पी ली, तब काट लिया बिच्छू ने; उसकी चंचलता का पारावार कहाँ रहेगा ? और यदि इस दशा में इस बन्दर के सिर पर कोई भूत सवार हो जाये तो फिर ?—भगवान् ही बचाये।

यही अवस्था हम अपने मन की करते हैं। एक तो वह पहले ही बहुत चंचल है, बन्दर से बहुत अधिक चंचल। फिर हम उसे आशा और तृष्णा की शराब पिला देते हैं। यह मिल जाये, वह मिल जाये, ऐसा हो जाये, वैसा हो जाये। ऐसा चाहने लगते हैं, इतनी प्यास जाग उठती है कि जिसका अन्त नहीं, सहस्र जन्म में भी अन्त नहीं—

मैं मुई न मन मुआ मर मर गये शरीर।
आशा तृष्णा न मिटे कह गये दास कबीर॥

इस शराब को पीने के पश्चात् यह बन्दर चञ्चल न होगा तो और क्या होगा? और फिर इस शराबी बन्दर को काट लिया ईर्ष्या और द्वेष के विच्छू ने। किसी ने तीन मंजला भवन बनवा लिया—जले ये जा रहे हैं। किसी को अच्छा पद मिल गया, घर में बैठकर दाँत ये पीस रहे हैं। अपने चारों ओर अग्नि प्रज्वलित करके उसमें भुने जाते हैं।

एक सज्जन का बेटा जज या मंत्री बन गया तो जलने वालों ने कहना आरम्भ कर दिया। अजी ये इसी लिए राज्य का पक्ष लेते हैं। बेचारे बिना आग जलते रहते हैं। और तभी सिर पर सवार हो गया अहंकार का भूत।

मैं, मैं, मैं; मैं यह हूँ, मैं वह हूँ। मुझ से कोई ऐसी बात करे, मैं उसकी हड्डियाँ न पीस दूँगा। पीसते रहो भाई। दूसरे की हड्डियाँ पिसें या न पिसें अपने आत्मा को तो तूने मन की चञ्चलता से पीस लिया है अवश्य। नहीं, मन को वश में करने की यह विधि नहीं। इसे वश में करना है तो पहले अपना आहार शुद्ध करो। आहार-शुद्धि पहला साधन है। जैसा आहार वैसा विचार। जैसा अन्न वैसा मन।

कुछ बेटियाँ कहेंगी कि यह अच्छा आनन्द स्वामी है, हमारी चटनी बन्द करना चाहता है। परन्तु नहीं बेटी, मैं तुम्हारी चटनी नहीं, मन की चंचलता बन्द करना चाहता हूँ जिसके कारण

सम्पत्ति और परिवार की विद्यमानता में भी तुम्हें शान्ति नहीं।

आहार शुद्ध हो तो बुद्धि शुद्ध होती है। बुद्धि शुद्ध हो तो स्मृति ठीक रहती है। स्मृति ठीक हो जाये तो हृदय की सब ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। सब मैल दूर हो जाती है। वही मन वश में आने लगता है जिसे हम बन्दर की भाँति चंचल कहते हैं। मन के सन्देह दूर हो जाते हैं। ब्रह्मलोक की प्राप्ति हो जाती है।

परन्तु आजकल आहार की जो दशा हो रही है उसे देख कर तो कहना चाहिये कि इस आधारभूत बात का ही हमने सत्यानाश करके रख दिया है।

ऐतरेयोपनिषद् में एक कथा आती है कि भगवान् जब सारी सृष्टि बना चुके, पशु, पक्षी, मनुष्य, वृक्ष, फूल, फल सब बन चुके तो मनुष्य और पशु सब इकट्ठे होकर भगवान् के पास पहुँचे। मनुष्य ने आगे बढ़ कर कहा, "महाराज! आपने बना तो दिया हमें, परन्तु अब हम खायें क्या? और कितनी बार खायें?

ईश्वर ने कहा—तुम २४ घण्टे में दिन और रात में दो बार खाओ। मनुष्य ने सुना पीछे हट गया। पशुओं ने सुना वे घबराये। आगे बढ़ कर बोले, "महाराज! २४ घण्टे में केवल दो बार? हम तो भूखे मर जायेंगे! भगवान् ने मुस्करा कर कहा, "घबराओ नहीं। २४ घण्टे में दो बार खाने की बात तुम्हारे लिये नहीं केवल मनुष्यों के लिए है। तुम तो पशु हो चाहे जितनी बार खाओ। दिन भर खाओ। रात का भी खाओ। तुम्हारे लिए कोई नियम नहीं।

यह थी भगवान् की आज्ञा। परन्तु आज का मानव! उसने जब देखा कि पशु हर समय खाते हैं तो उसने सोचा—यह पशु मुझ से छोटा और खाये अधिक, यह तो ठीक नहीं, मुझे भी अधिक खाना चाहिये। और तब उसने अपना प्रोग्राम बनाया। अरली टी (Early Tea) बेड टी (Bed Tea) और फिर टी और फिर पी, और फिर पी, पी टी, पी पी टी, टी, टी, सारा दिन यही होता रहता है।

मनुष्य मनुष्य नहीं रहा, कुछ और बन गया है, भूल गया है कि खाना स्वाद के लिए नहीं, केवल शरीर रक्षा के लिए है। भूल गया कि जीना खाने के लिए नहीं, खाना जीने के लिए है।

खुरदन बराये जीस्तन वो जिक्र करदन अस्त।
तो मौतक़द कि जीस्तन अज बहरे खुर्दन अस्त॥

अरे भाई! खाना इसलिये चाहिए कि जीवित रहो और भगवान् को याद करो और आप समझ बैठे कि जीवन ही खाने के लिए है।

सुनो! जो अधिक खाता है वह जल्दी मर जाता है। और इस का कारण बिल्कुल स्पष्ट है। प्रत्येक उत्पन्न होने वाले व्यक्ति को परमात्मा एक राशन कार्ड देता है, आज्ञा देता है कि जीवन में तू इतना खायेगा। इससे कम नहीं, अधिक भी नहीं। अब यह आपके अधिकार में है कि इस राशन को शीघ्र समाप्त कर दीजिये अथवा देर से। जितनी देर राशन रहेगा उतनी ही देर आप जियेंगे। मान लीजिये राशन में ५ सेर आटा आपको मिला। उसे आप पाँच दिन में भी समाप्त कर सकते हैं पाँच सप्ताह में भी। जितनी देर वह है उतनी ही देरी है। वह समाप्त हो गया तो समय से पूर्व दूसरा मिलेगा नहीं।

एक था दुर्गा मोटा। लाहौर में रहता था। कितना मोटा था वह, यह न पूछिये। एक दिन वह मिलाप के आफिस में आ गया। "सुनाओ भाई दुर्गा! कुछ पानी वानी पियो?" उसने कहा, "नहीं, पानी नहीं पीना।" मैंने कहा—"कोई सोडा पिलाएं तुम्हें?" वह बोला, "ना सोडा नहीं पीता मैं।" मैंने कहा, "कोई लेमनेड" वह बोला, "हाँ, लेमनेड पिला दो।" मैंने चपरासी से कहा, "इनके लिए लेमनेड की एक बोतल ले आओ।" दुर्गा बोला, 'एक बोतल से मेरा क्या बनेगा?' मैंने कहा, "फिर कितनी बोतल पियेगा?" उसने कहा,

"जितनी पिलादो, दस, बीस, तीस। मैं चकित हुआ।" समझा कि विनोद कर रहा है। चपरासी से कहा कि दो दर्जन लेमनेड ले आओ। बोतलें आईं तो मैंने कहा, "एक एक को खोलते जाओ इन्हें पिलाते जाओ।" दुर्गा बोला, "ना जी! इस प्रकार नहीं। सारी बोतलें खोल दो और एक बाल्टी में डाल दो।" मैंने चपरासी को ऐसा ही करने को कहा और हे भगवान् मेरे देखते ही देखते वह सारी बाल्टी पी गया। परन्तु सुनो, वह बेचारा दुर्गा अब जीवित नहीं है। छोटी ही आयु में मर गया। यह है बहुत खाने का परिणाम।

एक किंगकांग है। मैं था कश्मीर में। वह भी वहीं था। मैंने अपनी कथा में एक दिन कहा कि मनुष्य को थोड़ा खाना चाहिए। थोड़ा खाकर उसे पचाकर शक्ति में परिवर्तित करके उससे कार्य लेना चाहिए। कथा समाप्त हुई तो एक युवक ने मेरे पास आ कर कहा, "स्वामी जी आप तो थोड़ा खाने के लिए कहते हैं परन्तु उस किंगकांग को देखिये वह तो बहुत खाता है।" मैंने पूछा, "क्या खाता है?" उस युवक ने बताया कि प्रातराश में वह दो बड़ी डबल रोटी के टोस्ट खाता है। इनके साथ एक बाल्टी चाय पीता है तब एक दर्जन अण्डे और एक पाव मक्खन खाता है। मैंने कहा, "हे मेरे भगवान्! यह व्यक्ति क्या अब तक जीवित है?" वह बोला, "जीवित क्यों नहीं। और फिर यह तो अभी प्रातराश हुआ इसके पश्चात् दोपहर को भी खाता है, शाम को भी, रात को भी। दोपहर के भोजन में दो मुर्गे केवल चटनी के रूप में खाता है।" मैंने कहा, "इतना खा कर वह क्या करता है?" युवक ने बताया, "कुश्ती करता है।" मैंने पूछा, "कुश्ती में क्या करता है?" उसने कहा, "दूसरों को नीचे गिराता है।" मैंने कहा, "बस गिराता ही है न? उठाता तो नहीं किसी को? जिस भोजन से दूसरों को गिराने की शक्ति मिले वह तो ठीक नहीं, उसका कोई लाभ नहीं। जो दूसरों को गिराता है वह

स्वयं भी गिरता है कभी न कभी और इस प्रकार गिरता है कि फिर कई जन्म तक उठने की शक्ति नहीं रहती उसमें ।"

नहीं । खाना खाने का यह अर्थ नहीं । थोड़ा खाओ । जीने के लिए खाओ । ये जो ऋषि और मुनि लोग पर्वतों की गुफाओं में बैठे रहते हैं वे यदि इतनी लम्बी आयु पाते हैं तो किस प्रकार ? राशन उनका अधिक है खाते कम हैं । जब तक राशन समाप्त न हो मर नहीं सकते अतः अधिक समय तक जीते हैं । यह आहार अथवा भोजन पहली वस्तु है जिस पर विशेष ध्यान देना चाहिये—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

आज से पाँच सहस्र वर्ष पूर्व भगवान् कृष्ण ने यह बात कही थी "उचित भोजन खाओ ।" और उचित भोजन खाने का अर्थ क्या है ? पेट में यदि चार रोटियों के लिए स्थान है तो दो रोटियां खाओ । एक रोटी के स्थान पर पानी पियो, एक रोटी का स्थान वायु के लिए रहने दो । परन्तु आजकल तो चार रोटी का स्थान हो तो हम रेलवे के बाबू को घूस देकर साढ़े चार रोटियाँ पेट में पहुँचा देते हैं । उत्कोच लेने वाली रेल बाबू है यह जिह्वा । प्रतिदिन हम इसे घूंस देते हैं ।

रेल का बाबू बैठा था अपने कार्यालय में । एक लाला जी पहुँचे उसके पास बोले, "दो वैगन गाड़ियाँ बुक कर दो ।" रेल बाबू ने कहा "रेल गाड़ी पूरी हो चुकी ।" कोई वैगन और नहीं । लाला जी ने निकाला जेब से दस रुपये का नोट बोले, "ये ले लो बाबू जी ! हमारा माल भेज दो ।" बाबू आ गया लालच में उसने वैगन लगा दिये गाड़ी के साथ । आगे जाकर टक्कर हो गई । सब सत्यानाश हो गया। हम भी प्रतिदिन यही करते हैं । जिह्वा को स्वाद की रिश्वत देकर अन्दर माल भेजते जाते हैं, अन्दर जा कर टक्कर हो जाती है

कई देवियाँ तो बहुत आग्रह से खिलाती हैं। यह खाना अवश्य खा लीजिए मैंने बहुत परिश्रम से बनाया है। प्रातः काल से बना रही हूँ। थोड़ा सा खाकर देखो। ऐसी देवियों को जो अपने पतियों को आग्रहपूर्वक भोजन खिलाती हैं यूरोप के एक डाक्टर ने Murderers of their husbands अपने पतियों की हत्या करने वाली कहा है। परन्तु सुनो! मैं इन देवियों की बात नहीं कहता जो सामने बैठी हैं। ये तो बहुत अच्छी हैं। मैं दूसरो देवियों की बात कहता हूँ।

तो यह जिह्वा है घूँस लेने वाला रेल बाबू। घूँस लेकर यह माल को अवश्य अन्दर भेज देता है परन्तु अन्दर जाकर गाड़ियों की टक्कर हो जाती है। घूँस के कारण, स्वाद के कारण, हम भी सब कुछ खाये जाते हैं—मुरब्बे, अचार, चटनी, पापड़, भिंडी, आलू, परांठें, दाल, दही, खीर सब कुछ। पता उस समय लगता है जब वे अन्दर जा कर लड़ने लगते हैं।

सभी लोग जानते हैं कि दही और खीर इकट्ठे नहीं खाने चाहिए। परन्तु आज एक भाई के घर में भोजन करने गया तो वहाँ दोनों वस्तुएँ विद्यमान थीं। मैंने कहा, "दोनों तो मैं खा नहीं सकता। वे सज्जन बोले, "पेट में दही का खाना अलग होता है, खीर का अलग।" परन्तु सुनो! पेट में एक ही खाना है। वहाँ जाकर यह सब अगड़म सगड़म एकत्रित हो जाता है। सब का सम्मेलन आरम्भ होता है वहाँ "सब्जी सम्मेलन"। तब आलू कहता है भिण्डी से "पहले तू पच जा।" भिण्डी कहती है "पहले तू, मैं तो पीछे आई थी।" इस प्रकार सब लड़ते हैं मेरा कार्य बिगड़ जाता है। ऐसा नहीं करना चाहिए। आहार को उचित मात्रा में खाना चाहिए।

एक बहुभोजी पण्डित जी प्रीति भोज में गये। बहुत से पेड़े वहाँ खा गये। घर में आये तो पेट में होने लगा दर्द, वैद्य जी आये। उन्होंने कहा, "पण्डित जी चूर्ण खा लो।" पण्डित जी ने कहा, "वैद्य

जी चूर्ण खाने का स्थान होता तो एक पेड़ा और न खा लेता।" नहीं, इस प्रकार न खाओ। भोजन करो अवश्य परन्तु थोड़ा खाओ और शुद्ध खाओ। यदि आप बहुत अधिक लाल मिर्चें खाते हैं, बहुत चाय पीते हैं, सिगरेट पीते हैं और दूसरी उत्तेजक वस्तुएँ खाते हैं तो स्मरण रखिये आपका आसन कभी दृढ़ नहीं होगा। ध्यान में बैठेंगे तो बहुत देर बैठा नहीं जायेगा।

अब इस चाय को देखिये। १९०६ में मैं प्रथम बार अपने ग्राम से लाहौर आया। १९०७ में ला० लाजपतराय जी निर्वासित हुए। उस समय अनारकली बाजार के चौक में एक व्यक्ति अपने सामने एक मेज और स्टूल रख कर बैठा था। स्टूल पर ग्रामोफोन होता था। उस पर एक रिकार्ड जो कहता रहता था—

पी लो शक्ति देने वाली है।
मुफ्त चाय की प्याली है॥

और मेज पर रहता था एक स्टोव और बहुत से प्याले। वह व्यक्ति लोगों को निशुल्क चाय पिलाता था। इसके अतिरिक्त लाहौर में चाय की और कोई दुकान नहीं थी और अब उस लाहौर में या इस दिल्ली नगर में या किसी भी भारतीय नगर में चले जाओ प्रत्येक दसवी या बारहवीं दुकान चाय की मिलेगी। परन्तु यह चाय हमारे देश के लिए अच्छी तो है नहीं। यह उन देशों के लिए है जहाँ सर्दी अधिक होती है। काश्मीर में जाओ, शिमला या मसूरी में जाओ तो पी लो थोड़ी चाय। परन्तु यहाँ गर्म स्थानों में हर समय चाय। वस्तुतः यह हमारे देश के लिए अच्छी नहीं।

पहली वस्तु है आहार या भोजन! इस पर बहुत बल देता हूँ तो इसलिए कि मन को वश में करने के लिए यह आधारभूत बात है। परन्तु अब तो समय हो गया पूरा, इसलिए शेष कल।

॥ ओ३म् तत् सत् ॥

पाँचवाँ दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

कल उपनिषद् के एक मन्त्र की बात कह रहा था कि मन को एकाग्र करने के लिए, बुद्धि को शान्त करने के लिये और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने का पहला साधन है आहार को, भोजन को शुद्ध करना ।

आहारशुद्धौ सत्वशद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः ।
स्मृतिलाभे सर्वग्रन्थिनां विप्रमोक्षः ॥

आहार शुद्ध हो तो बुद्धि शुद्ध होती है। बुद्धि के शद्ध होने से स्मृति शुद्ध होती है, स्मृति के शुद्ध होने से सभी गाँठें खुल जाती हैं अर्थात् सन्देह दूर हो जाते हैं और मोक्ष तक पहुँचा जा सकता है। और आहार या भोजन क्या है यह कल आप को बता चुका। जैसा आहार वैसा विचार। जैसा अन्न वैसा मन। आहार खोटा है तो मन भी खोटा है। बुद्धि भी खोटी है और यदि आहार शुद्ध है, धर्म-पूर्वक अर्जित किया गया है तो फिर मन में सात्विक भावना उत्पन्न करता है।

जो लोग योग मार्ग पर चलते हैं उन्हें इस बात का कई बार अनुभव होता है। जिस दिन भी किसी का पाप भरा अन्न खा लें, पाप की कमाई का अन्न खा लें उसी दिन मन अशान्त हो जाता है। उसमें एकाग्रता नहीं रहती। पाप की कमाई से मन की जो अवस्था रहती है उसका वर्णन महात्मा हंसराज जी सुनाया करते थे। वे हरद्वार के मोहनाश्रम में थे। वहीं एक वानप्रस्थी सज्जन भी रहते थे। प्रतिदिन ध्यान लगाते थे। पर्याप्त सफलता भी उन्हें होने लगी थी। ध्यान लग जाता था। प्राण भी ऊपर उठते थे। एक दिन वह सज्जन महात्मा जी के पास आये। रोते हुए बोले, "महात्मा जी !

मैं तो लुट गया हूँ।" महात्मा जी ने पूछा, "क्या हो गया? क्या कोई चोरी हो गई?" वह बोले, "मेरा तो सभी कुछ नष्ट हो गया महाराज! इतने वर्ष का परिश्रम व्यर्थ हो गया।" महात्मा जी ने कहा, "अरे भाई! कुछ बता तो सही कि हुआ क्या है?" उस सज्जन ने कहा, "महात्मा जी! मैं रात्रि में तीन बजे उठता हूँ। हाथ मुख प्रक्षालन कर ध्यान में बैठता हूँ। थोड़ा प्राणायाम करने के पश्चात् मन एकाग्र हो जाता है। ध्यान लग जाता है। तब आज्ञा चक्र में अद्भुत दृश्य दिखाई देते हैं। मैं उन्हें देखता हूँ। प्रभु का नाम लेता रहता हूँ। परन्तु आज ध्यान में बैठा तो एक नवयुवती लाल रंग की साड़ी, पहने हुए सामने आकर खड़ी हो गई। वह रो रही थी। मैंने आँखें खोल दीं। पुनः हाथ मुँह धोया। फिर से ध्यान में बैठा, परन्तु फिर वही लड़की। वही लाल साड़ी, वही आँसू, वही क्रन्दन। जितनी बार प्रयत्न किया उतनी ही बार वही दिखाई दी। अपने प्रभु को भी मैं याद नहीं कर सका। अब भी आँखें बन्द करता हूँ तो उसके आंसू बहते हुए दिखाई देते हैं। मैं समझ नहीं पाता कि क्या करूँ। मेरे जीवन भर की कमाई नष्ट हुई जाती है।" महात्मा जी ने सोचते हुए कहा, "कल तुम सिनेमा देखने तो नहीं गये?" वानप्रस्थी ने कहा, "नहीं।" महात्मा जी ने पूछा, "कोई अश्लील पुस्तक तो नहीं पढ़ी?" वह बोला, "नहीं" महात्मा जी ने कहा, "किसी बुरी संगत में तो नहीं बैठे?" वह बोला, "नहीं।" महात्मा जी ने कहा, "आश्रम से बाहर गये थे?" वह बोला, "हां एक मित्र के साथ गया था। उसने कहा कि कंवलदास की कुटिया में आज एक भण्डारा हो रहा है। बहुत अच्छा भोजन वहाँ मिलेगा, खीर होगी मालपूड़े होंगे, पूरी और कचौरी भी होगी। मैं उस भण्डारे में गया था। महात्मा जी ने कहा, "जा पता करके आ कि वह भण्डारा किस ने किया था?" वानप्रस्थी गया, पता करके आया, बोला, "एक व्यक्ति अमुक नगर से आया था उस ने भण्डारा किया था।" महात्मा

जी ने कहा, "केवल इतना नहीं यह भी पता कर कि वह व्यक्ति कौन है ? क्या कोई वहुत बड़ा सेठ है ? और इसने भण्डारा क्यों किया ?" वानप्रस्थी पता लगाता रहा। पर्याप्त पूछताछ के पश्चात् महात्मा जी के पास आया बोला, "वह व्यक्ति बहुत धनवान् नहीं। उसके एक युवती लड़की थी। जिसको उसने पाँच सहस्र रुपये में एक वूढ़े के पास बेच दिया। उस पाँच सहस्र रुपये में से एक सहस्र रुपये का भण्डारा उस ने किया।" महात्मा जी ने कहा, "वही भाग्य-हीन लड़की तुम्हें ध्यान में रोती और पुकारती हुई दिखाई देती है। यह इसी अन्न का प्रभाव है। जब तक यह अन्न शरीर से निकलेगा नहीं तब तक तुझे शांति नहीं मिलेगी।" यह है अधर्म पूर्वक उपार्जित अन्न खाने का परिणाम।

परन्तु केवल बुरी कमाई का नहीं बुरे व्यक्ति के हाथ का बनाया हुआ अन्न भी मन पर प्रभाव डालता है। रणवीर था फाँसी की कोठड़ी में। मैं उसे प्रतिदिन उपनिषद् पढ़ाने जाता था। वह उप-निषदों का पाठ करता था। गायत्री मन्त्र का जाप करता था। फाँसी की कोठड़ी में भी वह हर समय हंसता रहता था। परन्तु एक दिन मैंने उसे बहुत उदास देखा पूछा, "तू आज उदास क्यों है ?" उसने कहा, "कल से बार बार एक भयानक चित्र मेरे सामने आता है। मैंने ऐसी बात कभी स्वप्न में भी सोची नहीं, परन्तु अब इस बात के अतिरिक्त कोई दूसरी बात जाप करते समय भी दिखाई नहीं देती। मैं तो दुःखी हो गया हूँ। समझ नहीं पाता हूँ कि क्या हो गया है मुझे ?" मैंने पूछा, "क्या दिखाई देता है तुझे ?" रणवीर ने कहा, "आप तो जानते ही हैं मैं अपनी माँ से बहुत प्यार करता हूँ परन्तु कल से ऐसा प्रतीत हो रहा है कि एक ग्रामीण सा मकान है, कच्चा मकान। चार दीवारी के भीतर एक सहन है। सहन के परे एक कोठड़ी। ऐसा प्रतीत होता है कि कोठड़ी में मेरी माँ अपने बालों को खोले बैठी है, बालों को सुखा रही है। तभी मैं हाथ में तलवार लेकर

सहन में पहुँचा हूँ। सहन से एक कोठड़ी में चला गया हूँ। अन्दर जाकर मैंने अपनी माँ को बालों से पकड़ा है। उन्हें घसीटता हुआ बाहर के सहन में ले आया हूँ। माँ चिल्ला रही है और मैं उनके वक्षस्थल पर तलवार से वार के ऊपर वार कर रहा हूँ। वे रो रही हैं, चिल्ला रही हैं, लहूलुहान हो गई हैं, परन्तु मैं रुकने का नाम नहीं लेता। यह भयानक दृश्य मुझे वारम्बार दिखाई देता है। अपनी मां के लिये ऐसी बात मेरे मन में आये इस से तो अच्छा है कि मर जाऊं।" मैंने सोचते हुए कहा, "कल तूने खाया क्या था?" उसने कहा, "जेल का जो साधारण खाना मेरे लिये आता है वही खाया था। अन्तर केवल इतना है कि कल जो भोजन खाया वह पहले से अधिक स्वादिष्ट था शायद कोई नया नया रसोइया जेल में आया है। वहुत अच्छा भोजन वह वनाता है। परन्तु इस वात से मेरे मन को सन्तोष नहीं हुआ। मैंने जेल के दरोगा महोदय से पूछा, "रणवीर को जो भोजन आप देते हैं उसे कल किस ने वनाया था?" उसने वताया कि कल एक नये कैदी को खाना वनाने पर लगाया है। मैंने पूछा, "यह कैदी कौन है?" उन्होंने उस कैदी का रिकार्ड मंगवा कर बताया कि उसे अपनी माँ को कत्ल करने के अपराध में आजीवन कारावास मिला है। वह एक गाँव में रहता था कच्चे मकान में। जहाँ चार दीवारी के भीतर एक सहन था, सहन के परे एक कोठड़ी। उस कोठड़ी में उसकी माँ नहाने के पश्चात् अपने वाल सुखा रही थी कि यह व्यक्ति जो उसके धन पर अधिकार करना चाहता था तलवार लेकर सहन में आया। वहाँ से कोठड़ी में गया। माँ को घसीटता हुआ सहन में ले आया। वहाँ बार बार तलवार के वार करके उसे मार डाला। मरने वाले की क्रन्दन सुन लोग आ गये। उन्होंने माँ के हत्यारे को पकड़ लिया।" मैं यह सुन कर चकित रह गया। जिस व्यक्ति ने भोजन बनाया उसके मन के विचार किस प्रकार भोजन करने वाले के मन में पहुँच

यह देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने उन्हें कहा, "रणवीर का भोजन इस व्यक्ति से मत बनवाइये।" वे सज्जन व्यक्ति थे, मान गये। तीसरे दिन मैं रणवीर के पास पहुँचा तो पूछा, "अब तो वह भयानक दृश्य दिखाई नहीं देता।" वह प्रसन्न था, हँसता हुआ बोला, "न, अब तो दिखाई नहीं देता। अब तो मन फिर से एकाग्र होने लगा है।" यह है अन्न का प्रभाव।

भीष्म पितामह शर-शय्या पर लेटे हुये थे। युधिष्ठिर महाराज उन से धर्मोपदेश ले रहे थे। धर्म की बड़ी गम्भीर और लाभदायक बातें वे कह रहे थे। तभी द्रौपदी ने कहा, "पितामह! मेरा भी एक प्रश्न है! आप आज्ञा दें तो पूछूँ?" भीष्म बोले, "पूछो बेटी! तुम भी एक प्रश्न पूछो, मैं उत्तर दूंगा।" द्रौपदी ने कहा, "महाराज! प्रश्न पूछने से पूर्व क्षमा चाहती हूं। मेरा प्रश्न कुछ टेढ़ा है। बहुत अच्छा न लगेगा आपको। अगर बुरा लगे तो रुष्ट न होना।" भीष्म बोले, "नहीं बेटी! मैं रुष्ट नहीं होता। तुम जो भी चाहो पूछो।" द्रौपदी ने कहा, "पितामह! आपको स्मरण है जब दुर्योधन की सभा में दुःशासन मुझे नग्न करने का प्रयत्न कर रहा था, मैं रो रही थी, चिल्ला रही थी। आप भी वहाँ उपस्थित थे। आप से भी मैंने सहायता की प्रार्थना की थी। आज आप ज्ञान और ध्यान की बड़ी बड़ी बात कह रहे हैं, उस समय आपका यह ज्ञान और ध्यान कहाँ गया था? उस समय एक अबला का अपमान आपने कैसे सहन किया। उसकी पुकार को क्यों नहीं सुना?" भीष्म बोले, "तुम ठीक कहती हो बेटी! उस समय मैं दुर्योधन का पापभरा अन्न खाता था। वह पाप मेरे शरीर में समाया हुआ था। रक्त बन कर मेरी नसों में दौड़ रहा था। उस समय मैं चाहने पर भी धर्म की बात नहीं कह सका। अब अर्जुन के तीरों ने उस रक्त को निकाल दिया है। पर्याप्त समय से मैं शरों की शय्या पर पड़ा हूँ। पाप का अन्न शरीर से निकल गया है इसलिए धर्म की बातें कहने लगा हूँ।

यह है अन्न का प्रभाव। जैसा अन्न वैसा मन। जैसा आहार वैसा विचार। परन्तु इस बात को अब और नहीं बढ़ाना। उपनिषद् का महान् अमृत सागर मेरे सामने है, अभी तो केवल कुछ बिन्दु आपके समक्ष रक्खे हैं। इसलिये अगली बात सुनिये। उपनिषद् का अगला सन्देश है—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।

इस संसार में सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करो परन्तु कर्म करते हुये जियो। कर्मशील बनो, प्रमादी न बनो। यह है उपनिषद् का सन्देश। ईश्वर ने मनुष्य को उत्पन्न किया है तो क्यों? प्रायः यह प्रश्न कई लोग पूछते हैं। वेद भगवान् इसका उत्तर देते हैं—

श्रमेण तपसा सृष्टा

ईश्वर ने मनुष्य को बनाया है, परिश्रम के लिए, पुरुषार्थ के लिए, कर्म के लिये और इसलिए कि धर्म मार्ग पर चलते हुये तप कर सके, कष्टों और आपत्तियों को सह सकें, सहता हुआ आगे बढ़ सके।

आलसी बन कर, पाँव पर पाँव रख कर सो जाने के लिये, मखमली गद्दों पर जीवन बिता देने के लिए, ईश्वर ने मनुष्य को नहीं बनाया। परन्तु यह कर्म एक ही प्रकार का तो नहीं। एक है कर्म, दूसरा अकर्म, तीसरा विकर्म, चौथा है सुकर्म।

कर्म वह है जो हम दूसरों के भले के लिये करते हैं। पाठशाला बनवाना, कुएं बनवाना, अस्पताल, अनाथालय खोलना, आर्य समाज मन्दिर बनवाना। दुःखी और निर्धन की सहायता करना—ये सब कर्म हैं।

अकर्म वह है जो हम अपने लिये करते हैं। खाना, पीना, नहाना धोना, सोना, वस्त्र पहनना, यज्ञ करना, ईश्वरोपासना प्रार्थना आदि ये सब अकर्म हैं।

विकर्म वे हैं जो हम दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए करते हैं

दूसरों को नीचे गिराने के लिये करते हैं। भाई को भाई से लड़ाना, देश में फूट उत्पन्न करना, जाति, भाषा और प्रदेश का नाम लेकर देश के लोगों में एक दूसरे के लिये घृणा उत्पन्न करना—ये सब विकर्म हैं।

और सुकर्म वह है जिससे मुझे भी लाभ हो, दूसरों को भी। दान देना, ऐसे यज्ञ करना जिनका उद्देश्य संसार की भलाई है, संन्यासी वन कर सब लोगों को सन्मार्ग पर ले जाने का प्रयत्न करना—ये सब सुकर्म हैं।

चार प्रकार के इन कर्मों में सुकर्म ही सबसे श्रेष्ठ है। कर्म भी करो परन्तु अधिक ध्यान दो सुकर्म की ओर। कर्म करो परन्तु फल की अभिलाषा न करो, तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में है। भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान, सांख्य, उपासना कितने ही प्रकार के योगों की शिक्षा गीता में दी तो अर्जुन ने कहा—"भगवान् आपने तो मुझे दुविधा में डाल दिया। कई प्रकार के योग आपने बताये, प्रत्येक योग की प्रशंसा की। फिर इन में सब से अच्छा सब से बड़ा योग कौन सा है?" भगवान् कृष्ण ने कहा—सुनो अर्जुन—

कर्मयोगो विशिष्यते।

इन सब योगों में कर्म योग ही सबसे बढ़ कर है।

मुण्डकोपनिषद् में भी आता है कि प्राचीन काल में ऋषियों ने वेद भगवान् से कर्मकाण्ड को निकाल कर इसका उपदेश लोगों को दिया। त्रेता युग में इस कर्मकाण्ड के अनुसार कर्म होता था, लोग सुखी थे।

सुनो ऐ संसार के लोगो! आज भी यदि सुखी होना चाहते हो तो एक ही मार्ग है। वेद के कर्मकाण्ड को अपनाओ। कर्मयोग ही सब से बड़ा है। यह है उपनिषद् का सन्देश। कर्म कर, पुरुषार्थ कर, पसीना बहा कर कर्म कर। आलसी न बन, निकम्मा न बन। सौ

वर्ष तक जीने की इच्छा कर परन्तु कर्म करता हुआ जी।

इसके पश्चात् उपनिषद् एक और बात कहता है। उसका अगला सन्देश है प्रभु की कृपा प्राप्त कर क्योंकि उस प्रभु की कृपा के बिना कुछ भी होता नहीं। कठोपनिषद् का ऋषि कहता है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

यह जो आत्मा है, यह जो परमपिता परमात्मा है यह बहुत बातें करने या बहुत पढ़ने लिखने से नहीं मिलता, बहुत ज्ञान, बहुत सुनने से भी नहीं मिलता। पढ़ना लिखना अच्छा है परन्तु यदि कोई समझे कि केवल पढ़ने से, पुस्तकों का पाठ करने से अथवा पुस्तकों का ज्ञान प्राप्त कर लेने से ईश्वर मिल जायेगा तो यह बात ठीक नहीं। इस प्रकार वह मिलता नहीं। चारों वेदों को पढ़ा हुआ था रावण, छः दर्शन भी उसने पढ़े थे। बहुत बड़ा विद्वान् था वह। इसलिये उसकी मूर्ति बनाते समय दस सिर बना देते हैं और सबसे ऊपर लगा देते हैं गधे का सिर क्योंकि सब कुछ पढ़ कर भी उसकी बुद्धि बिगड़ी हुई थी, उसका चरित्र भ्रष्ट था।

महर्षि वेदव्यास बहुत बड़े विद्वान् थे, कितने ही शास्त्र उन्होंने पढ़ डाले। कितने ही शास्त्र उन्होंने लिख डाले। इतना बड़ा महाभारत लिख डाला। उनके ग्रन्थों को आज तक सारा संसार मानता है। महर्षि दयानन्द ने भी उनकी विद्या की प्रशंसा की है। परन्तु यही वेदव्यास एक दिन बैठे थे सरस्वती नदी के तट पर। उदास बहुत थे। बहुत दुःखी कि मुझे शान्ति क्यों नहीं, मैं सदाचारी हूँ, कितने ही ग्रन्थ मैंने लिखे हैं, कितने ही शास्त्रों का अध्ययन किया है। ज्ञान और धर्म की कितनी ही बातें मैंने लोगों को बताई हैं परन्तु मेरे अपने मन को शान्ति नहीं। चित्त को चैन नहीं। इस प्रसन्नता और शान्ति के लिये मैं क्या करूँ। इस प्रकार सोच रहे थे तब

नारद मुनि वहाँ आ निकले। महर्षि वेद व्यास को इस प्रकार उदास देख कर बोले "वेदव्यास जी! आप इस प्रकार दुःखी होकर क्यों बैठे हैं?"

व्यास जी बोले, "ठीक समय पर आये हो नारद मुनि! एक प्रश्न का उत्तर मुझे नहीं मिलता। आप संसार भर में घूमते हुए लोगों को शान्ति और सुख का मार्ग दिखाते हो, मुझ पर भी कृपा करो। मैं बहुत दुःखी हो गया हूँ।" नारद ने पूछा—"ऐसी क्या बात हो गई है महर्षि?"

व्यास जी ने कहा, "मैं धर्म को जानता हूँ, इतिहास को जानता हूँ, शास्त्र को जानता हूँ। सत्य और सदाचार के मार्ग को अपना कर कितने ही ग्रन्थ लिखे हैं। परन्तु मेरे अपने मन को चैन नहीं, आत्मा में शान्ति नहीं। इसका कारण मैं समझ नहीं पाता।" नारद बोले, "वेद व्यास बहुत कुछ किया है आप ने परन्तु एक त्रुटि रह गई है।" वेद व्यास ने पूछा, "कौन सी त्रुटि?" नारद बोले, "व्यास जी सब कुछ करके भी आप ने ईश्वर-कृपा प्राप्त नहीं की। यही त्रुटि रह गई है। यह त्रुटि दूर नहीं हुई तो पढ़ना पढ़ाना, लिखना लिखाना सब व्यर्थ है। इससे मन को चैन, आत्मा को सन्तोष मिलेगा नहीं।"

यह कहा नारद जी ने, बहुत पढ़ने और लिखने के सम्बन्ध में परन्तु तब क्या यह आत्मा बहुत बुद्धि वालों, बहुत मेधा वालों को मिलता है? उपनिषद् का ऋषि कहता है, नहीं उनको भी नहीं मिलता और आज देख लो, ये रूस और अमेरिका के वैज्ञानिक! कैसे कैसे चमत्कार उन की बुद्धि दिखाती है। परन्तु क्या उन्हें परमात्मा का दर्शन हो गया। मन का चैन और आत्मा की शान्ति मिल गई? पूछो जाकर उनसे, इतनी बुद्धि के होने पर भी शान्ति और सन्तोष उनके लिये है नहीं। तब प्रभु का दर्शन उन्हें कहाँ होगा? नहीं बहुत बुद्धि दौड़ाने से यह नहीं मिलता।

सोचियाँ सोच न होवसी, जे सोचें लख बार ॥

गुरु नानक देव जी महाराज ने यह बात सोलह ग्राने सत्य कही। सोचो, बुद्धि दौड़ाग्रो जहाँ तक तुम्हारी बुद्धि जाती है, यहाँ से ग्ररबों खरबों मील जो परे है उसे तुम पाग्रोगे किस प्रकार ?

ग्रौर फिर बहुत सुनने से भी नहीं मिलता। धर्म की बातें सुनो। ज्ञान की बातें सुनो ग्रौर केवल सुनते ही रहो, सुन कर जीवन में धारण न करो तो फिर यह ग्रात्मा मिलता नहीं। तब किस प्रकार मिलता है।

केवल एक ही मार्ग है ग्रौर वह यह कि प्रभु-कृपा ग्राप पर हो जाये। ग्राप कहेंगे यह तो बहुत कठिन कार्य है। हम परमात्मा का दर्शन चाहते है उसकी कृपा पाने के लिये ग्रौर उपनिषद् कहता है कि परमात्मा की कृपा के बिना दर्शन नहीं मिलता। तब यह गोरख-धन्धा क्या है ? इस समस्या का समाधान क्या है ? प्रभु की कृपा पाने की विधि क्या है ? उपनिषद् इस का भी उत्तर देता है। स्पष्ट ग्रौर सीधे शब्दों में वह कहता है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

वह परमात्मा उस व्यक्ति को नहीं मिलता जो पाप से परे नहीं हट गया, जिसने बुरे चरित्र को, बुरे चलन को छोड़ कर, ग्रच्छे चरित्र को, ग्रच्छे चलन को नहीं ग्रपना लिया। परन्तु यह केवल एक शर्त है। दूसरी शर्त यह है कि जिस व्यक्ति का मन चञ्चल है, उस को भी ईश्वर नहीं मिलता।

फिर उस को भी नहीं मिलता जिस के चित्त की वृत्ति एकाग्र नहीं हुई, जिसके चित में एकाग्रता नहीं, टिकाव नहीं। ग्रौर फिर उस को नहीं मिलता, उसके ऊपर भी प्रभु की कृपा नहीं होती, जो तृष्णा का त्याग नहीं कर सका। भले ही उसका चरित्र ग्रच्छा हो,

उस का मन निश्चल हो, चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र हों, भले ही उस ने लम्बा योगाभ्यास किया हो, यदि वह तृष्णा के पीछे भागता फिरता है और उस की तृष्णा शान्त नहीं हुई तो प्रभु की कृपा उस पर नहीं हो सकती। प्रभु के दर्शन उस को नहीं हो सकते।

योगदर्शन के तीसरे पाद में ऐसी कितनी ही सिद्धियों का वर्णन आता है जिन्हें योगी अपने शरीर के भीतर या शरीर से बाहर विभिन्न स्थानों पर ध्यान जमाने से प्राप्त कर सकता है। महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि धारणा, ध्यान और समाधि तीनों के एक स्थान पर मिल जाने का नाम संयम है। तब वे कहते हैं कि धर्म, लक्षण, अवस्था और रूप में संयम करने से योगी को भूत और भविष्यत् की सब बातें ज्ञात हो जाती हैं। शब्द और अर्थ में संयम करने से पशु पक्षी, कीट, पतङ्ग—हर किसी की भाषा उसे समझ आने लगती है। संस्कारों का साक्षात्कार करने से पिछले जन्म का ज्ञान हो जाता है। दूसरों के बाहर से ज्ञात होने वाले ज्ञान में संयम करने से उसके मन की छुपी हुई बातें ज्ञात होने लगती हैं। शरीर के रूप में संयम करने से योगी अपने सामने बैठे या खड़े हुए लोगों के लिए भी अदृश्य हो जाता है। वे उसे देख नहीं सकते। कर्म में संयम करने से मृत्यु का ज्ञान हो जाता है। मित्रता में संयम करने से जिस के साथ मित्रता की भावना हो उसके जैसी शक्ति मिल जाती है। शक्ति में संयम करने से उसकी शक्ति मिल जाती है जिसकी शक्ति में संयम किया जाये अर्थात् योगी यदि चाहे तो हाथी की शक्ति प्राप्त कर सकता है। अजगर की शक्ति प्राप्त कर सकता है। ज्योति वाली प्रवृत्ति में संयम करने से लाखों करोड़ों मील दूर की वस्तुएँ दिखाई देने लगती हैं। सूर्य में संयम करने से सारे संसार का ज्ञान हो जाता है। चन्द्रमा में संयम करने से तारों का ज्ञान होता है। कण्ठ में संयम करने से भूख और प्यास मिट जाती है। मूर्धा की ज्योति में

संयम करने से सिद्ध पुरुषों के दर्शन होने लगते हैं। चित्त और शरीर दोनों के बन्धन का कारण कर्म है उसे ढीला करने से, उसके ढीलेपन में संयम करने से योगी सूक्ष्म शरीर से दूसरों के शरीर में प्रविष्ट हो जाता है। उदानवायु में संयम करने से योगी पानी के ऊपर चलने लगता है, दलदल में डूबता नहीं, काँटे उसे चुभते नहीं। समान वायु में संयम करने से उसके भीतर प्रकाश जागता है और उसके चारों ओर फैलने लगता है। शरीर और आकाश का जो सम्बन्ध है उस में संयम करने से वह आकाश में उड़ने लगता है। इस प्रकार उन आठ सिद्धियों को भी योगी प्राप्त करता है, जिनको आप कई बार सुनते हैं। ये सिद्धियाँ हैं –

अणिमा—इतना छोटा हो जाना कि कोई देख न सके।

लघिमा—इतना हल्का हो जाना कि वायु में उड़ता फिरे।

महिमा—इतना बड़ा हो जाना कि अंगुली से चांद को छूले।

गरिमा—इतना भारी हो जाना कि कोई हिला न सके।

प्राप्ति—प्रत्येक वस्तु का प्राप्त हो जाना।

प्राकाम्य – प्रत्येक इच्छा का विना प्रयत्न पूरा हो जाना।

ईशत्व—आकाश, अग्नि, वायु, जल और पृथिवी आदि को अपनी इच्छानुसार चलाने की शक्ति मिल जाना।

ये और इसी प्रकार की कितनी ही अन्य सिद्धियाँ योगी उन साधनों से प्राप्त कर सकता है। जिन का महर्षि पतञ्जलि ने वर्णन किया है। इन सब का वर्णन सुन कर आपके मुख में पानी आने लगा होगा। परन्तु सुनो इन सब सिद्धियों का वर्णन करते हुए भी महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—

ते समाधावपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः।

ये सब की सब सिद्धियाँ समाधि का, ईश्वर प्राप्ति का विघ्न हैं।

प्रभु दर्शन के मार्ग में रुकावटें हैं। केवल सांसारिक सफलता है यह, आत्मा को प्राप्त करने का मार्ग नहीं।

इस सम्बन्ध में स्वामी रामतीर्थ जी के जीवन की एक कथा याद आती है। लाहौर छोड़ने के पश्चात् मस्ती की दशा में वे ऋषिकेश से आगे गंगा के किनारे घूम रहे थे एक दिन। एक योगी उस समय उन्हें मिला। स्वामी राम ने उससे पूछा, "बावा! कितने वर्ष से आप संन्यासी हैं?" योगी ने कहा, "कोई चालीस वर्ष हो गये।" स्वामी राम बोले, "इतने वर्ष में आप ने क्या कुछ प्राप्त किया?" योगी ने बड़े अभिमान से कहा, "इस गंगा को देखते हो, मैं चाहूँ तो इसके पानी पर उसी प्रकार चल कर दूसरे पार जा सकता हूँ जैसे कोई शुष्क भूमि पर चलता है।" स्वामी राम ने कहा, "उस पार से वापस भी आ सकते हैं आप?" योगी ने कहा, "हाँ वापस भी आ सकता हूँ।" स्वामी राम बोले, "इसके अतिरिक्त कुछ और?" योगी ने कहा, "यह क्या छोटी बात है?" स्वामी राम ने हँसते हुए कहा, "बहुत छोटी बात है बाबा! चालीस वर्ष आपने खो दिये। नदी में नौका भी चलती है। दो आने उधर जाने के लगते हैं, दो आने इधर आने के। ४० वर्ष में आपने वह प्राप्त किया जो केवल चार आने खर्च करके किसी भी व्यक्ति को मिल सकता है। तुम अमृत के सागर में गये अवश्य परन्तु वहाँ से मोती के स्थान पर कंकर उठा लाये।"

इसीलिये उपनिषद् के ऋषि ने कहा, "जिस व्यक्ति ने अपनी तृष्णा को समाप्त नहीं किया वह, आत्मा को नहीं पा सकता। जिसका चरित्र अच्छा नहीं वह आत्मदर्शन से वंचित रहता है। जिसका मन एकाग्र नहीं वह भी वंचित, जिसके चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र नहीं वह भी वंचित, जिसने तृष्णा का अन्त नहीं किया वह भी वंचित। तब यह आत्मा मिलता किस को है? उपनिषद् कहता है—उसको मिलता है जिसका चरित्र शुद्ध है, मन निश्चल, एकाग्र है,

जो तृष्णाओं को दूर कर चुका और जिसने प्रत्येक ज्ञान को प्राप्त कर लिया।

चरित्र के सम्बन्ध में कोई भ्रान्ति न रहे इसलिये अधिक खोल कर कहना चाहता हूँ। चरित्र का अर्थ प्रायः स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध समझा जाता है। परन्तु चरित्र केवल यहीं तक सीमित नहीं। वह बहुत दूर तक जाता है। यदि आपके शरीर में बल है, भुजाओं में शक्ति है और आप यह देख कर भी मौन रहते हैं कि एक गुण्डा किसी अबला को अथवा किसी निरपराध बच्चे को तंग कर रहा है तो विश्वास कीजिये यह अच्छा चरित्र नहीं। यदि आपके पास धन है और आप यह देखने के पश्चात् भी उसे खर्च नहीं करते कि कोई दूसरा व्यक्ति धन के न होने से रोग और कष्ट में फँस रहा है, तो सच जानिये आप चरित्र से गिरते हैं। यदि आपके पास बुद्धि है और आप यह देख कर भी मौन रहते हैं कि दूसरा व्यक्ति कुमार्ग पर जा रहा है और उसे बचाने का प्रयत्न नहीं करते तो आप चरित्र से गिरते हैं। यदि आप किसी को वचन देकर उसका पालन नहीं करते तो आप चरित्र से गिरते हैं। देश में रहते हैं, उसका अन्न जल खाते हैं और उसके पश्चात् भी शत्रुओं का साथ देते हैं, कभी अमेरिका और कभी चीन का पक्ष लेते हैं, तो आप चरित्र से गिरते हैं। चरित्र का अर्थ बहुत विशाल है, केवल स्त्री पुरुष के सम्बन्ध का नाम चरित्र नहीं है।

दूसरी बात है मन का निश्चल होना। मन निश्चल होता है पाँच कर्मेन्द्रियों और पाँच ज्ञानेन्द्रियों के वश में होने से। ये दस इन्द्रियाँ वश में आ जायें तो यह ग्यारहवीं इन्द्रिय मन जो सबसे बड़ा और शक्तिशाली है वश में हो जाता है। आँख है न? यह कहती है मुझे तो अच्छे अच्छे रूप देखने हैं। अब एक ही रूप तो अच्छा नहीं। दौड़ते रहो इन स्वरूपों के पीछे। दौड़ते-दौड़ते पाँव चकनाचूर हो जायेंगे परन्तु आँख की तृष्णा कभी मिटेगी नहीं। यह कान है न?

यह कहता है मुझे अच्छी अच्छी ध्वनियाँ सुननी हैं, अच्छे गीत सुनने हैं। अब सुनो ये गीत, सुनो ये ध्वनियाँ, परन्तु इन का अन्त कहाँ है? एक दिन कान बहरे हो जायेंगे ध्वनियाँ फिर भी विद्यमान रहेंगी। गीत फिर भी गाये जायेंगे। यह नाक है न। यह अच्छी अच्छी सुगन्ध लेना चाहती है। लखनऊ के, जौनपुर के, पेरिस और रोम के इत्र सूंघना चाहती है। फिर यह रसना है न। इसका चटोरापन कभी समाप्त नहीं होता प्रातः, सायं, दोपहर, रात्रि इसे नया स्वाद चाहिए। परन्तु इस जिह्वा के, कान के, आँख के या अन्य इन्द्रियों के जाल में फंसे व्यक्ति के लिये चैन और शान्ति कहाँ है? मैं यह नहीं कहता कि आँख से देखो नहीं, कान से सुनो नहीं। जिह्वा से चक्खो नहीं या नाक से सूँघो नहीं। मैं स्वयं खाता हूँ, सुनता हूँ, देखता हूँ फिर आप से कैसे कहूँ कि ऐसा मत कीजिये। यह नहीं कहता, केवल यह कहता हूँ कि इनको वश में रक्खो। अपनी लगाम उनके हाथ में न दे दो। ऐसा करने से ही प्रभु कृपा प्राप्त होगी। ऐसा करने से ही सच्चे शिव के दर्शन होंगे, जैसे भगवान् दयानन्द को हुए। वे घर से निकले तो इस दृढ़ संकल्प के साथ कि सच्चे शिव के दर्शन करूंगा। इस दृढ़ संकल्प को उन्होंने शक्ति दी, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों और ग्यारहवें मन के ऊपर नियन्त्रण पाने के पश्चात्।

मैं जब मानसरोवर और कैलाश की यात्रा करने के लिये गया तो यह बात एक दृढ़ सत्य बन कर मेरे समक्ष आई। अल्मोड़ा से २५० मील आगे है कैलाश। बीच में लिपूलेक घाटी आती है। इसके इधर भारत है परली ओर तिब्बत। १६७५० फुट ऊंची घाटी है यह। बर्फ से लदी हुई। यहाँ से आगे जा कर ५४ मील घेरे की मानसरोवर झील आती है। मानसरोवर से तीस मील के अन्तर पर कैलाश है। हम लोग कैलाश की ओर बढ़े तो सामने एक नदी आई। पर्याप्त तीव्र बह रही थी वह। बर्फ के छोटे छोटे नुकीले टुकड़े तीव्रता से बहे जा रहे थे। हमारे साथ मार्गदर्शक था कीचखम्बा। मैंने उससे

कहा, "कीचखम्बा ! यह तो नदी है।" वह बोला, "हाँ स्वामी जी ! नदी तो है, इसको पार करना होगा।" मैंने कहा, "इसके ऊपर कहीं पुल तो होगा ?" वह बोला, पुल कोई नहीं है पैदल ही पार करना होगा।" मैंने कहा, "परन्तु यह तो बहुत तीव्र है इसमें वर्फ के टुकड़े भागे जा रहे हैं। इसे पार कैसे करेंगे ?" कीचखम्बा बोला, "यदि कैलाशपति के पास पहुँचना है, उनके स्थान का दर्शन करना है तो इसे पार करना ही होगा, दूसरा कोई मार्ग नहीं।" मैंने कहा, "यदि इसे पार करना ही पड़ता है तो इसके ऊपर पुल क्यों नहीं वना देते ?" वह बोला, "पुल कौन वनायेगा ? ये तिव्वत की नदियाँ हैं। दो मास चलती हैं। दस मास जमी रहती हैं। अतः पुल का विचार छोड़ दो, इसे पैदल ही पार करो। मैंने कहा, "कीचखम्वा ! तू उठा कर ले चले तो मैं नदी पार करलूँ।" वह बोला, "आपको तो उठा लूँ परन्तु आप अकेले तो हैं नहीं यह दस व्यक्तियों की सेना भी आपके साथ है। दस बार जाऊँ, दस बार आऊँ मेरा तो कचूमर ही निकल जायेगा। अतः साहस करो आगे बढ़ो। नदी बहुत गहरी नहीं।" तव क्या करना था, उतरे नदी में। पानी वस्तुतः वहुत गहरा नहीं था परन्तु तीव्र इतना कि पैर फिसल फिसल जाते थे। वर्फ के टुकड़ों से टाँगे छिली जाती थीं और पानी ! कितना ठण्डा था वह ? यह आप को कैसे वताऊँ। पिघली हुई वर्फ वही जाती थी। दूसरी पार पहुँचते पहुंचते शरीर का निचला भाग सुन्न हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे हैं ही नहीं। मैं श्वास लेने के लिये बैठ गया तो कीचखम्वा ने कहा, "वैठो नहीं, चलो, अपितु दौड़ो। एक बार बैठ गये तो फिर बैठे ही रह जाओगे।"

टाँगों की चिन्ता किये विना चलना आरम्भ किया परन्तु थोड़ी ही दूर पहुंच कर फिर एक नदी आ गई। उसे पार करके आधा मील ही चले कि तीसरी नदी आ गई। दो मील और आगे गये तो चौथी नदी। हे मेरे भगवान् ! ज्यूँ ज्यूँ दिन चढ़ता जाता था त्यूँ त्यूँ नदियों

में पानी भी बढ़ता जाता था। हमारे यहाँ वर्षा होने पर नदियों का पानी बढ़ता है, तिब्बत में धूप चढ़ने पर नदियों का पानी बढ़ता है। ज्यूँ ज्यूँ धूप तीव्र होती है त्यूँ त्यूँ वर्फ अधिक पिघलती है, पानी बढ़ता है। इस प्रकार पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं पूरी दस नदियाँ हमने पार कीं। हमने दसवीं नदी को पार किया तो शरीर आधा मरा हुआ आधा जीवित। एक भी पग चलने को जी नहीं चाहता था परन्तु हमें तो दर्शन करने थे उस पवित्र धाम के जहाँ भगवान् शिव ने तप किया था। जहाँ माता पार्वती ने प्रभु के ध्यान में मग्न होकर अपने आपको भुला दिया था। इसलिए थके हुए भी आगे बढ़े। परन्तु तीन ही मील गये थे कि आगे एक और नदी। उसे देख कर तो प्राण सूख गये। अब तक जितनीं भी नदियाँ हम पार करके आये थे वे इस विशाल नदी के समक्ष न होने के बराबर थीं। नदी नहीं एक पूरा दरिया था वह। दोपहर हो गया था ! इतना पानी उसमें था जितना और किसी में था नहीं। और उस गर्जते हुए पानी में वह वर्फ के तोदे। वर्फ के टुकड़े इतनी शीघ्रता से बहते हुए थे जैसे घुड़ दौड़ के घोड़े भागे जाते हों। मैंने उस नदी को देखा तो कहा, "कीचखम्बा ! यह तो बहुत बड़ी नदी है।" वह बोला, "हाँ स्वामी जी ! यह सब से बड़ी है। परन्तु यदि कैलाशपति का धाम देखना है तो इस को पार करना ही होगा इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं।" मैंने कहा, "यहाँ तो उठा कर ले चल।" वह बोला, "और शेष दस व्यक्ति?" मैंने हार कर कहा, "अच्छा ! अपना हाथ तो पकड़ा दे।" उसने कहा, हाँ यह कर सकता हूँ।" उस का हाथ पकड़ कर उतर पड़े हम नदीं में और पार हो गये। परन्तु पार क्या हो गये। यूँ समझो कि मर गये। पूरे नहीं मरे। पूरे मर जाते तो यहाँ आने का झंझट न रहता। आपको ये बातें भी न सुननी पड़तीं। इस नदी से आधा मील आगे है दारचन की मण्डी। वहाँ से एक मील आगे पहुँच कर कीचखम्बा ने हमारे तम्बू लगवा

दिये। शाम के समय मैं तम्बू में बैठकर ध्यान करने लगा तो एक प्रश्न उत्पन्न हुआ कि यह कैसा दृश्य दिखाया प्रभु ने। पहले छोटी-छोटी नदियाँ फिर एक गर्जता हुआ, तीव्रता से भागता हुआ नद। हम जा रहे हैं भगवान् शिव की पवित्र भूमि का दर्शन करने। यह सब क्या है ?

तभी भीतर से आवाज आई ये दस नदियाँ दस इन्द्रियाँ हैं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पांच कर्मेन्द्रियां और जो सब से तीव्र नद है यह मन है। इन ग्यारह नदियों को पार करके ही, इन को वश में करके ही मनुष्य सच्चे शिव के दर्शन पा सकता है। उस परम पिता की कृपा को पा सकता है।

यह है प्रभु कृपा को और प्रभु दर्शन को पाने का उपाय। सरल नहीं बहुत कठिन है। ये नदियाँ बहुत तीव्र हैं और यह अन्तिम नद हे मेरे भगवान् ! कितनी भयानक है यह ! और लोग आकर कहते हैं कि किसी सरल विधि से प्रभु का दर्शन करा दो। उनकी कृपा करा दो। मैं आश्चर्य के साथ सोचता हूँ कि सरल मार्ग बताऊँ कैसे। यदि सच्चे शिव के दर्शन करने हैं, यदि कैलाशपति के पास तक पहुँचना है तो इन ग्यारह नदियों को पार करना ही होगा इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग ही नहीं।

यह है उपनिषद् का सन्देश। अशान्त मन न हो। इन इन्द्रियों से कार्य लो। खाओ पियो परन्तु इनके जाल में न फँस जाओ। इन्हें अपने वश में करो स्वयं इनके वश में न हो जाओ।

इसके पश्चात् उपनिषद् ने तीसरी बात कही है कि जिस व्यक्ति के चित्त की वृत्तियाँ एकाग्र नहीं उस को भी यह आत्मा नहीं मिलता। आप कहेंगे यह अच्छी आपत्ति है। बहुत कठिनता से मन को समझाया अब चित्त महोदय आ गये। परन्तु स्मरण रक्खो, यदि चित्त साधारण वस्तु नहीं है। क्या है यह ? कहाँ से आया है ? इसके सम्बन्ध में खोज की तो पता लगा कि यह प्रकृति के कुटुम्ब से

बना है। माया के परिवार से इसका सम्बन्ध है। अहंकार से यह उत्पन्न हुआ है तब और अन्वेषण हुआ कि इसका काम क्या है? कर्तव्य क्या है? करता क्या है? तब पता लगा कि जितनी भी वासनाएँ, जितने भी संकल्प, जितनी भी इच्छाएँ, जितने भी संस्कार और जितने भी विचार हमारे भीतर उत्पन्न होते या एकत्रित होते हैं उन सब का माल गोदाम वह चित्त हैं। कई लोग मन को गालियाँ देते हैं कि यह टिकता नहीं। अरे भाई वह टिक जाता है। एक समय में एक कार्य ही वह कर सकता है। वह तीव्र वहुत है। अभी जाप करता है, अभी कनाट प्लेस में पहुँच गया फिर वापिस आ गया। एक सैकिण्ड के करोड़वें भाग से भी कम समय में वह अरबों मील दूरी तक जा पहुँचता है। वहाँ से वापस भी आ जाता है। परन्तु अरब मील जाये या खरब मील, एक समय में रहता एक ही स्थान पर है परन्तु यह चित्त—

एकमनेकार्थमवस्थितं चित्तम् ॥

एक ही समय में अकेला ही जो वहुत स्थानों पर विद्यमान रहता है वह चित्त है। यह वास्तविक वस्तु है जो टिकती नहीं। यह सब से बड़ा विघ्न है। जब तक यह ठीक न हो जाये प्रभु की कृपा नहीं होती। आप कहेंगे यह एक और संकट आ गया। जो एक होता हुआ भी अनेक स्थानों पर रहता है। उसे टिकायेंगे किस प्रकार? ऐसा किये विना प्रभु की कृपा तो मिलती नहीं तो फिर करें क्या?

परन्तु हमारे पूर्वज और ऋषि समस्याओं को केवल उत्पन्न नहीं करते थे उनका समाधान भी खोजते थे। इतनी खोज की उन्होंने प्रत्येक बात की कि उसे देख कर हृदय कमल खिल उठता है। अद्भुत कौशल दिखलाया उन्होंने। शरीर की एक एक नाड़ी को गिन डाला। उसके गुण को समझा। उसके भीतर जो कुछ होता है उसे देखा। किस किस नाड़ी से कौन-कौन सा विघ्न होता है यह भी

देखा। किस प्रकार इस प्रकृति को बदला जाये यह भी देखा। चित्त के सम्बन्ध में अन्वेषण करके उन्होंने कहा —

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः।

इस चित्त को टिकाने का इसकी चञ्चलता को दूर करने का साधन है एक तत्त्व का अभ्यास। संसार में कई लोग २५ तत्त्व मानते हैं, कई १२ मानते हैं, कई पाँच। परन्तु यह एक तत्त्व क्या है? यह एक तत्त्व है ब्रह्म तत्त्व और ब्रह्म तत्त्व के सम्वन्ध में ऋषियों ने कहा—

तस्य वाचकः प्रणवः

उसका वाचक ओ३म् है।

अब इस ओम् के नाम के अभ्यास का क्या अर्थ है? यह कि उसी का ध्यान करो। उठते बैठते, चलते फिरते, हर समय उसी का ध्यान करो। प्रत्येक स्थान पर उसी की शक्ति को देखो। उसके सौन्दर्य को निहारो। उसी की महिमा का अवलोकन करो। उसके विस्तार को देखो और जब किसी एकान्त शान्त स्थान में सिद्धासन या पद्मासन या कोई दूसरा आसन लगा कर बैठो तो माथे के भीतर आज्ञा चक्र में, वक्षस्थल के भीतर हृदय चक्र में या किसी भी दूसरे स्थान पर जहाँ ध्यान टिके—ओम् का ध्यान करो—निरन्तर यह अभ्यास करते रहो, अन्ततः चित्त टिक जायेगा। यह है एक तत्त्व का अभ्यास। इस अभ्यास के विना चित्त में एकाग्रता नहीं आती। एकाग्रता न आये तो फिर प्रभु की कृपा नहीं मिलती और कृपा न मिले तो भगवान् का दर्शन भी नहीं होता।

दर्शन होने की यह वात कुछ लोगों को विचित्र सी लगती है। परन्तु सुनो भगवान् के दर्शन भी होते हैं और निराकार होने पर भी। उसका कोई स्वरूप नहीं, रङ्ग नहीं, रूप नहीं, मूर्ति नहीं। मुण्डकोपनिषद् का ऋषि घोषणापूर्वक कहता है—

तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।

स्पष्ट रूप से उन्होंने कहा—'तं निष्कलं पश्यते' उस निराकार को, उस स्वरूप को जिसमें कोई कला नहीं, कोई रूप नहीं, जिसकी कोई मूर्ति नहीं उसे देखता है, उसका साक्षात्कार करता है। परन्तु कब ? 'ध्यायमानः' ध्यान में ।

इसलिये मैं कहता हूँ कि चित्त की वृत्तियों को टिकाने के पश्चात् भगवान् की कृपा मिलती है और उनका दर्शन होता है तो कविता की भाषा में नहीं कहता अपितु वस्तुतः दर्शन की बात कहता हूँ। देखने की बात कहता हूँ। इसी देखने की बात को उपनिषद् कहता है। परन्तु यह ध्यान की अवस्था, जिसमें इस परब्रह्म परमात्मा सच्चे शिव के दर्शन होते हैं पाँच मिनट में तो प्राप्त नहीं होता। आप प्रतिदिन पाँच मिनट या दस मिनट सन्ध्या करें और मेरे पास आ कर कहें कि "हमें दर्शन नहीं हुये" तो निश्चय रूप से यह बात ठीक नहीं। पाँच या दस मिनट में तो मनुष्य का ध्यान ही नहीं लगता फिर दर्शन कैसे हो जायेंगे। इसलिये महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में भी और ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में स्पष्ट रूप से कहा कि प्रत्येक मुमुक्षु को कम से कम दो घण्टे ध्यान अवश्य करना चाहिए। स्मरण रखिये महर्षि ने कम से कम दो घण्टे कहा। चित्त के एकाग्र होने में इससे भी अधिक समय लग सकता है। परन्तु कम से कम दो घण्टे तो अभ्यास करो। ध्यान लगाने का प्रयत्न करो। ऐसा करो नहीं, केवल पाँच मिनट की सन्ध्या के पश्चात् ही खड़े हो जाओ और कहो कि प्रभु के दर्शन नहीं हुये तो इसमें अपराध किसका है ?

इसके पश्चात् उपनिषद् ने चौथी बात कही कि अशान्त मन को भी ईश्वर की कृपा नहीं मिलती। अशान्त मन का अर्थ है ऐसा मन जिसमें तृष्णा विद्यमान हो, कामनाएँ विद्यमान हों। ऐसे मन के साथ आप बैठे ध्यान में। प्रभु का भजन आरम्भ किया। एक डेढ़ घंटा व्यतीत हो गया। तभी मन के किसी कोने में बैठी हुई तृष्णा जाग

उठी। जागृत हो कर बोली, "ध्यान में तो बैठे हो, अमुक काम रुका पड़ा है, भगवान् से कहो कि उस कार्य को करा दें। बस बिगड़ गया कार्य। कार्य भले ही हो जाये परन्तु भगवान् की कृपा इसके पश्चात् मिलेगी नहीं।

वन में बैठे थे युधिष्ठिर जी महाराज ध्यान में मग्न हुए। ध्यान से उठे तो द्रौपदी ने कहा, "महाराज ! इतना भजन आप भगवान् का करते हो, इतनी देर तक ध्यान में बैठे रहते हो फिर उन से यह क्यों नहीं कहते कि इन संकटों को दूर कर दें। इतने वर्ष से आप और दूसरे पांडव वन में भटक रहे हैं। इतना कष्ट होता है। इतना क्लेश ! कहीं पत्थरों में रात्रि व्यतीत करनी पड़ती है, कहीं काँटों में। कभी प्यास बुझाने को पानी नहीं मिलता, कभी भूख मिटाने को खाना नहीं। फिर आप भगवान् से क्यों नहीं कहते कि इन कष्टों का अन्त कर दे। युधिष्ठिर जी बोले, "सुनो द्रौपदी ! मैं भगवान् का भजन करता हूँ तो सौदे के लिए नहीं। मैं भजन करता हूँ केवल इसलिए कि भजन करने में आनन्द मिलता है। वह सामने फैली हुई उस पर्वतमाला को देखो। उसे देखते ही मन प्रफुल्लित हो जाता है। हम उससे कुछ माँगते नहीं। हम देखते हैं इसलिये कि देखने से प्रसन्नता होती है। इसी प्रसन्नता के लिए मैं भगवान् का भजन करता हूँ।"

और इसके बजाय यदि आप तृष्णाओं की भीड़ लेकर भगवान् के दरबार में पहुँच जायें तो भगवान् समझ सकता है कि आ गया है यह भिखारी भीख माँगने के लिए। भजन की घूस देने आया है मुझे। इसे मुझसे प्यार नहीं है। ऐसी दशा में वे क्या कृपा करेंगे ? कृपा न होगी तो वह आनन्द कैसे मिलेगा जो केवल उनकी कृपा से मिलता है।

पाँचवीं बात है 'प्रज्ञान' विशेष ज्ञान, आत्मा का ज्ञान, इन्द्रियों का ज्ञान। परन्तु यह आत्मिक ज्ञान तब तक नहीं मिलता जब तक

आत्मा शरीर के साथ जुड़ा हुआ है और जब तक आत्मिक ज्ञान न मिले तब तक प्रभु की कृपा भी नहीं होती। आप कहेंगे कि आत्मा जब तक शरीर में है तब तक शरीर से अलग कैसे हो सकता है। परन्तु यह जुड़ने और अलग होने की बात भी बताता हूँ। एक व्यक्ति को ज्वर हो गया, आपके पूछने पर वह कहता है, "मैं रुग्ण हूँ" परन्तु यह सत्य तो नहीं। वस्तुतः वह रोगी नहीं उसका शरीर रोगी है। एक व्यक्ति गिर गया। आप पूछते हैं "क्या हुआ?" वह कहता है मैं गिर गया। यह भी सत्य नहीं। वह नहीं गिरा उसका शरीर गिर गया है। शरीर के घायल होने से वह घायल नहीं होता। शरीर के मरने से वह मर नहीं जाता। शरीर के डूबने से वह डूब नहीं जाता। शरीर के जल जाने से वह जल नहीं जाता। परन्तु जब तक वह समझता है मैं घायल हो गया, मैं डूब गया, मैं जल गया, मैं मर गया, तब तक समझो कि उसका आत्मा शरीर से अलग नहीं हुआ, शरीर से जुड़ा हुआ है।

इससे उलट शरीर से अलग होना क्या है? यह कि आत्मा अपने आप को शरीर न समझे क्योंकि वास्तव में वह शरीर है नहीं। वह मकान में रहता है मकान नहीं है। दुकान को चलाता है दुकान नहीं है। वंशी बजाता है वंशी नहीं है। कोट पहनता है कोट नहीं है। इस प्रकार शरीर को अपने आप से पृथक् समझ कर, प्रज्ञान को प्राप्त करके आत्मा जब आत्मा के साथ मित्रता करता है, आत्मा जब परमात्मा से मिलता है। तब उसे प्रसन्नता होती है। यह प्रसन्नता ही प्रभुकृपा का चिह्न है।

परमात्मा प्रत्येक व्यक्ति को उसके कर्मों के अनुसार धन, सम्पत्ति रूप-यौवन, शक्ति, शासन यश, पत्नी, सन्तान, परिवार सब कुछ देता है परन्तु सुनो! सुनो! यह प्रसन्नता, यह अकथनीय आनन्द, यह मानसिक शान्ति केवल उसी को मिलती है जिस पर उसकी कृपा

हो जाये और यह कृपा तब होती है जब आत्मा अपने आपको शरीर से पृथक् करके परमात्मा से मित्रता करता है।

देखिये आप प्रति दिन अपने शरीर से पृथक् होते हैं। प्रति दिन आप को वह प्रसन्नता भी मिलती है जो शरीर से पृथक् होने पर प्राप्त होती है। कब अलग होते हैं? जब सो जाते हैं। सोये आप, इन्द्रियां सो गईं—आँख, नाक, कान, हाथ, पाँव, वाणी सब नींद में खो गये। तब केवल तीन वस्तुएं जागती हैं। एक आत्मा, दूसरा मन, तीसरा प्राण। परन्तु बलिहारी इस मन की। इस की शक्ति का ठिकाना कहाँ है? आँख सो गई, नाक सो गई, कान सो गये, वाणी सो गई। कुछ भी दिखाई नहीं देता, सुनाई नहीं देता, शरीर के लिए सारा संसार समाप्त हो गया। तब यह मन महाराज आँख, नाक, कान, वाणी और दूसरी इन्द्रियों की सहायता लिये बिना एक दूसरा संसार बनाने लगता है। स्वप्नों का संसार। अभी एक स्वप्न आ रहा है फिर दूसरा, फिर तीसरा। कई लोगों को तो बड़े विचित्र स्वप्न आते हैं, वे आकर सुनाया भी करते हैं। परन्तु मन अन्त में थक जाता है। थक कर सो जाता है। तब केवल आत्मा जागता है और प्राण जागता है।

परन्तु प्राण भी परमात्मा ने विचित्र सेवक बनाया है आत्मा के लिए। मनुष्य के उत्पन्न होने से पूर्व यह कार्यारम्भ कर देता है और उसकी मृत्यु तक निरन्तर करता रहता है। एक क्षण के लिए भी रुकता नहीं। प्रभु की कृपा है कि प्राण किसी लेबर यूनियन का सदस्य नहीं, यदि होता और घोषणा करता कि "मैं भी कम से कम दो घण्टे की छुट्टी प्रतिदिन किया करूंगा" तो संसार समाप्त हो जाता। प्रतिदिन दो घण्टे के लिए मनुष्य मर जाता। परन्तु सौभाग्य है कि प्राण किसी लेबर यूनियन का सदस्य नहीं। यह दिन रात कार्य करता है २४ घण्टे निरन्तर कार्य करता है। और जब इन्द्रियाँ सो जाती हैं, मन भी थक कर सो जाता है तब यही आत्मा के साथ

जागता रहता है। इस अवस्था को "गाढ़ निन्द्रा" Sound Sleep कहते हैं। योग की भाषा में इसे सुषुप्ति कहते हैं। ऐसी निद्रा जिस में आत्मा और प्राण के अतिरिक्त सब सोये पड़े हैं। ऐसी अवस्था में व्यक्ति दो, तीन, चार घण्टे रहता है और जब उठता है तो कहता है, "अहा हा! आज तो बहुत आनन्द आया।" परन्तु सब तो सोये पड़े थे, फिर यह आनन्द किस को आया, आत्मा को? और किस समय आया? जब शरीर से उसका सम्बन्ध ढीला हो गया। जब वह परमात्मा से मिल गया।

अब तनिक और आगे चलो। एक व्यक्ति को ज्वर है। वह जानता नहीं कि वह शरीर से भिन्न एक आत्मा है। अपने आपको वह शरीर समझे बैठा है कहता है 'मुझे बुखार है।' शरीर के साथ मिला रहने के कारण वह अपने आप को शरीर कहता है। तब एक और व्यक्ति शरीर से पृथक् होकर, प्रज्ञान को प्राप्त करके, आत्मा को परमात्मा में मिला कर उसके आनन्द को प्राप्त करता है। उस आनन्द की मस्ती में कहता है "अहं ब्रह्मास्मि।" मैं ब्रह्म हूँ। यह भी अशुद्ध है जैसे आत्मा शरीर नहीं, ऐसे आत्मा ब्रह्म भी नहीं। परन्तु यह तनिक सूक्ष्म बात है इसको यहीं छोड़िये और यह देखिये कि आजकल क्या हम प्रभु की कृपा को पाने का प्रयत्न कर रहे हैं। आजकल तीन प्रकार के मनुष्य हैं उनकी बात सुनिये—

महाराज अकबर बैठे थे अपनी राज्य सभा में। बहुत बड़े ज्ञानी और विद्वान् उनके मन्त्री थे। इन्हीं में एक बीरबल भी थे। अकबर सबसे अधिक उनका सम्मान करते थे। इस बात से दूसरे लोगों को ईर्ष्या होती थी। एक दिन बीरबल सभा में नहीं गये, तो कुछ लोगों ने राजा से शिकायत की कि आप बीरबल का बहुत सम्मान करते हैं, हमारा कम। बीरबल में ऐसी क्या विशेषता है जो हम में नहीं है? राजा ने देखा कि इन लोगों में ईर्ष्या जागृत हो गई है

बोले, "अच्छी बात ! बीरबल हमारे प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देता है तुम भी एक प्रश्न का उत्तर दे दो।"

दरबारियों ने कहा, "पूछिये महाराज !" राजा ने कहा, "देखो यहाँ से अथवा बाहर से दो अबके ले आओ, दो तबके ले आओ और दो ऐसे ले आओ जो न तवके हों न अब के।"

दरबारियों ने सोचा कि राजा आज भंग पी गया है अन्यथा इस प्रश्न का क्या अर्थ ? बोले, "महाराज ! हमने ठीक से सुना नहीं कि आपने क्या कहा ?" महाराज बोले, "नहीं सुना तो ध्यान पूर्वक सुनो।" "यहाँ से या बाहर जाकर दो अब के ले आओ, दो तब के ले आओ, दो ऐसे लाओ जो न तब के हों न अब के।" दरबारियों के पल्ले अब भी कुछ पड़ा नहीं। तभी बीरबल जी आये। महाराज को नमस्ते की। सब को मौन देखकर बोले, महाराज ! ये सब लोग मौन क्यों हैं ? महाराज ने कहा, "ये लोग तुम से ईर्ष्या करते हैं, कहते हैं कि जिस प्रकार तुम प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते हो उसी प्रकार ये भी दे सकते हैं। मैंने इन से एक प्रश्न पूछा उसका उत्तर इन्हें सूझता नहीं।" बीरबल ने पूछा, "क्या प्रश्न था वह ?" महाराज ने कहा, "मैंने इन्हें आज्ञा दी थी कि दो अव के ले आओ, दो तब के और दो ऐसे हों जो न अब के हों न तब के।" बीरबल झुककर बोले, "श्रीमान् यह तो साधारण सी बात है, मैं ला दूँगा ये सब के सब परन्तु श्रीमान् आज्ञा दें तो कल उपस्थित कर दूँगा उन्हें।" महाराज ने कहा, "कल तक ही सही। परन्तु उन्हें उपस्थित करो अवश्य।" दूसरे दिन प्रातः बीरबल गये यमुना के तट पर, शायद इसी यमुना के किनारे जो देहली के पास बहती है। अकबर उन दिनों यहीं थे। यमुना के किनारे कितने ही राजा महाराजाओं के तम्बू लगे थे। दूर कुछ साधु भी अपनी धूनियाँ रमाये प्रभु भजन में मगन थे। बीरबल ने दो राजाओं के पास जाकर कहा, "आप को महाराज अकबर ने बुलाया है मेरे साथ चलो।" तब दो साधुओं से प्रार्थना

की, "महाराज अकबर आपका दर्शन करना चाहते हैं कृपा करके मेरे साथ चलिये।" चारों को साथ लेकर चाँदनी चौक में पहुँचे तो दो दुकानदारों को उठा लिया, बोले, "मेरे साथ चलो। महाराज की राज्य सभा में जाना होगा।" उन छः व्यक्तियों के साथ सभा में पहुँचे तो महाराज ने कहा, "बीरबल! हमारे प्रश्न का उत्तर मिल गया?" बीरबल बोले, "हाँ महाराज! आपके प्रश्न का उत्तर मैं अपने साथ लाया हूँ।" दरबारियों ने उन व्यक्तियों की ओर आश्चर्य से देखा कि ये व्यक्ति राजा के प्रश्न का उत्तर कैसे हैं! यह वे समझ नहीं सके। परन्तु बीरबल ने कहा, "महाराज! आपने कहा था दो अब के लाओ। ये दो राजा हैं, यही दो अब के हैं। पिछले जन्म में इन्होंने तप किया, दान किया, पुण्य किया, उसका फल अब भोग रहे हैं। ये अब के हैं। और ये दो साधु! ये तब के हैं। आज ये तप कर रहे हैं। लोक सेवा कर रहे हैं, प्रभु भजन करते हुए कष्ट सहन कर रहे हैं इन्हें सुख मिलेगा आगे चल कर ये तब के हैं। राजा ने शेष दो व्यक्तियों की ओर देख कर पूछा, "और ये?" बीरबल ने कहा, "ये दोनों दुकानदार हैं। ये न अब के हैं, न तब के हैं। ये न पहले तप कर पाये, न अब करते हैं। इनके लिए न आज सुख है न भविष्य में होगा।"

अब तुम सोच लो अपने लिए कि तुम किस से सम्बन्धित हो। अब के हो, तब के हो अथवा उनमें से हो जो न अब के हैं न तब के। यदि अन्तिम बात है तो कृपा करके ऐसा न करो, प्रभुकृपा प्राप्त करने का यत्न करो।

ये हैं पाँच बातें जो प्रभु कृपा पाने के लिए आवश्यक हैं। एक बार पुनः इन पांचों को सुनिये।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥

जिस ने दुश्चरित को त्याग नहीं दिया, जो इन्द्रियों के जाल में फँसा हुआ है, जिसका चित्त एकाग्र नहीं, चित्त को वृत्तियाँ शान्त

नहीं, जिसने अपनी तृष्णाओं की इच्छाओं को दबा नहीं दिया और जिसने इन्द्र के ज्ञान को, आत्मिक ज्ञान को प्राप्त नहीं किया, उसे यह आत्मा कभी मिलता नहीं उस पर भगवान् की कृपा कभी होती नहीं।

और इन्द्र का ज्ञान, आत्मिक ज्ञान क्या है ? साधारण बुद्धि तो प्रत्येक मनुष्य में होती है। वह विगड़ जाये तो उसे कुबुद्धि कहते हैं, तीव्र हो जाये तो उसे सुबुद्धि कहते हैं। यह सुबुद्धि मिल जाय तो उसे प्रज्वलित करो। उसके मल को धो दो, तब मिलेगी मेधा। इसको भी माँजो तब यह बनेगी प्रतिभा। प्रतिभा का अर्थ है अन्दर से उत्पन्न होने वाला ज्ञान, जिसे अंग्रेजी में Intutional insight कहत हैं। हिन्दी में अन्तर आत्मा की ध्वनि। इसको भी माँजो तो यह बनेगी ऋतम्भरा अर्थात् वह बुद्धि जो सत्य और असत्य को पृथक् कर देती है, आत्मा और प्रकृति को एक दूसरे से पृथक् करके देखती है। यह बुद्धि जब उत्पन्न होगी तब आत्मा का ज्ञान मिलेगा। तब पता लगेगा कि यह शरीर केवल शरीर है, आत्मा नहीं है।

मैं जब कैलाश की यात्रा से वापस आ रहा था तो मार्ग में 'लिप्पू'' घाटी में पाँव फिसल गया। उसकी हड्डी टूट गई। किसी न किसी प्रकार यहाँ पहुँचा। एक डाक्टर को दिखाया। एक्सरे कराया तो पता लगा कि पाँव की हड्डी टूट तो गई थी परन्तु अब ठीक उस स्थान पर जुड़ गई है जहाँ उसे जुड़ना चाहिए था। तब एक दिन मैं सड़क पर जा रहा था तो एक सज्जन मिले। बड़ी सहानुभूति से बोले, "आप तो गिर गये थे ?" मैंने आश्चर्य से कहा, "आपको किसने कहा ?" वे बोले कि समाचारपत्र में पढ़ा कि आप गिर गये थे। मैंने कहा, "आपने अशुद्ध पढ़ा। मैं तो कभी गिरा ही नहीं ! हाँ, यह शरीर गिर गया था।" वे बोले, "आपको चोट तो बहुत लगी थी ?" मैंने कहा, "नहीं भाई ! मुझे चोट नहीं लगी, पाँव को चोट लगी थी।" वे बोले, "आपकी हड्डी टूट गई थी न ?" मैंने कहा नहीं महाराज ! मेरी नहीं, मेरे पाँव की हड्डी टूट गई थी। यह है आत्मा

को शरीर से पृथक् समझने वाली बात—

खञ्जर की क्या मजाल कि इक जख्म कर सके ।
तेरा ही है ख़याल कि घायल हुआ है तू ॥ (स्वामी राम)

इस आत्मा को मारने वाला कौन है ? इसके लिए मरना नहीं, जीना नहीं, घायल होना नहीं, कटना नहीं, डूबना नहीं, सूखना नहीं । यह तो सदा से अजर, अमर, नित्य और शाश्वत है ।

न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।

शरीर के मरने पर यह मरता नहीं । शरीर के उत्पन्न होने पर यह उत्पन्न नहीं होता । एक छोटा सा नन्हा सा बच्चा संसार में आता है । उस समय वह बोल नहीं सकता, चल नहीं सकता, कोई भी काम नहीं कर सकता । अतः शनैः शनैः बड़ा होता है, बालक अथवा बालिका बनता है । तब वह और बड़ा होता है, युवक बनता है फिर और बड़ा होता है । यौवन उसके मुख मण्डल पर चमकने लगता है । तब वह अधेड़ आयु में पहुँचता है । यौवन की धूप ढलने लगती है । मुखमण्डल मुरझाने लगता है । तब बुढ़ापा आ जाता है । दाँत नहीं, दृष्टि नहीं, पाचक शक्ति नहीं । हाथ काँपते हैं, कमर झुक गई है और तब एक दिन वह चला जाता है । लोग कहते हैं मर गया । परन्तु कौन मर गया ? क्या आत्मा ? वह तो कभी मरता नहीं, मरता है केवल शरीर । बचपन से मृत्यु तक के सारे खेल शरीर के होते हैं । शरीर बच्चा है आत्मा बच्चा नहीं, शरीर युवा है, आत्मा नहीं, शरीर बूढ़ा होता है, आत्मा बूढ़ा नहीं होता अन्त में शरीर मरता है आत्मा नहीं मरता ।

उपनिषद् के ऋषियों ने इस बात को बार-बार कहा है कि शरीर की मृत्यु आत्मा की मृत्यु नहीं । मरने के पश्चात् क्या होता है ? शरीर को छोड़ कर यह आत्मा कहाँ-कहाँ जाता है ? कैसे जाता है ? किस-किस लोक में पहुँचता है ? किस प्रकार वापस आता है ? किस प्रकार दूसरे शरीर को धारण करता है यह सब उन्होंने बताया है परन्तु अब तो समय हो गया पूर्ण अतः शेष फिर ।

॥ ओ३म् तत् सत् ॥

छठा दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

पिछले भाषण में मैं आपको बता रहा था कि उपनिषद् के अनुसार प्रभु दर्शन बहुत पढ़ने और लिखने से नहीं मिलता, बहुत बुद्धि दौड़ाने से नहीं मिलता, बहुत सुनने और सुनाने से नहीं मिलता—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ॥

तब फिर किस प्रकार मिलता है यह आत्मा । उपनिषद् का ऋषि कहता है कि—

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

उसे मिलता है यह आत्मा जिसे वह स्वयं ही वरण करता है, जिस पर वह स्वयं ही कृपा कर देता है ।

यह तो बहुत कष्ट की बात है, प्रभु को मिलने के लिए निकलो और वह मिले उसको जिस पर उसकी कृपा हो, तब यह कार्य बनेगा कैसे ? इसलिए मैंने आपको बताया कि ईश्वर कृपा किस पर करता है, उस कृपा को पाने की विधि क्या है ?

नाविरतो दुश्चरितात्......

पाँच ऐसे दुरित हैं जिनके विद्यमान रहने से आत्मा नहीं मिलता । सब से पहले बुराई है बुरा चलन, चरित्र से गिर जाना, दूसरी बुराई है इन्द्रियों का वश में न होना, तीसरी बुराई है चित्त का एकाग्र न होना, चौथी बुराई है मन में कामनाओं का बना रहना और पाँचवीं बुराई है 'प्रज्ञान' आत्मा के ज्ञान का न होना—ये पाँच बुराइयाँ जब तक दूर न हों तब तक प्रभु की कृपा नहीं मिलती ।

इन पाँच दुर्गुणों के सम्बन्ध में विचार करते हुए यह देखा कि चरित्र का अर्थ केवल स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध नहीं अपितु उस से आगे बढ़ कर चरित्र का अर्थ समस्त जीवन नीति है। यह भी देखा कि जिसने जिह्वा, कान, नाक, और आँख आदि इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं किया, वह इन्हीं के जाल में फँस के, इन्हीं का दास बन कर रह जाता है। यह भी देखा कि चित्त क्या है? कैसे वह एक ही समय अनेकों स्थानों पर विद्यमान रहता है। और किस प्रकार उसको एकाग्र करने के लिए "एक तत्त्व" अर्थात् ब्रह्मतत्त्व का अभ्यास ही एक मात्र साधन है। यह भी देखा कि ब्रह्मतत्त्व का नाम ओम् है और यह भी कि उसके जाप की विधि क्या है? फिर हमने यह भी देखा कि चरित्र अच्छा हो, इन्द्रियाँ वश में हों, चित्त एकाग्र हो, इस एकाग्रता के कारण ध्यान लग जाता हो और यह सब कुछ होने के पश्चात् भी मन में यदि कोई तृष्णा हो तो प्रभु की कृपा नहीं मिलती। योगदर्शन के विभूति पाद में बहुत सी सिद्धियों का वर्णन आता है जिन्हें योगी प्राप्त कर सकता है। इन्हें प्राप्त कर के संसार को चमत्कार दिखा सकता है। वायु में उड़ सकता है। पानी पर चल सकता है। सहस्रों मील दूर की बातें कर सकता है। महर्षि दयानन्द ने इन सिद्धियों का वर्णन किया तो मैडम ब्लैवस्टकी और करनल अलकाट ने उन्हें लिखा कि वे संसार को ऐसे चमत्कार दिखाने का प्रयत्न क्यों नहीं करते? तब महर्षि ने उन्हें लिखा कि "करने को मैं सब कुछ कर सकता हूँ, परन्तु मैं तो अपना जीवन वेद भाष्य और वैदिक धर्म के प्रचार में लगाना चाहता हूँ। यदि चमत्कार ही दिखाना शुरू कर दूँ तो फिर इस कार्य को कौन करेगा? यदि आप चाहते हैं तो मैं आपको सिद्धियाँ प्राप्त करने का मार्ग बता सकता हूँ आप स्वयं इस मार्ग पर चल कर देखिये। स्वयं इन सिद्धियों को प्राप्त करके लोगों को चमत्कार दिखाइये।"

यह बात महर्षि के उन पत्रों में आज भी लिखी है जो पं० भगवद्दत्त

जी ने एकत्रित किये और जिन्हें ग्रन्थ के रूप में रामलाल कपूर ट्रस्ट वालों ने प्रकाशित कराया है। यह बात आप को केवल इसलिए बता रहा हूँ कि ये सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं अवश्य। परन्तु इन्हें प्राप्त करने की तृष्णा बनी रहे तो फिर ये सिद्धियाँ ही मिलती हैं, प्रभु का दर्शन नहीं मिलता, प्रभु की कृपा नहीं मिलती। तब हमने यह भी देखा कि 'प्रज्ञान' का अर्थ है इन्द्र का ज्ञान, आत्मा का ज्ञान। और यह भी देखा कि जिसने यह ज्ञान प्राप्त नहीं किया उसको भी प्रभु कृपा नहीं मिलती।

तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि इसको नहीं मिलती, उसको नहीं मिलती, तो फिर यह कृपा मिलती किस को है ? मुण्डकोपनिषद् के ऋषि इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥

इन वस्तुओं से मिलता है यह आत्मा—सत्य, तप, यथार्थ ज्ञान और ब्रह्मचर्य। ये चार बातें विद्यमान हों तो उस तपस्वी को जिसने बुराइयों को समाप्त कर दिया है अपने शरीर में ही उस महान् प्रकाशमय ज्योति का दर्शन होता है जिसे देखने वाले ज्योतियों की ज्योति कहते हैं और जिसके सम्बन्ध में उपनिषद् कहते हैं—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति॥

वह प्रकाश सूर्य के प्रकाश जैसा नहीं, सूर्य वहाँ नहीं चमकता ये चन्द्रमा और तारे भी नहीं चमकते, बिजलियाँ नहीं चमकतीं, फिर यह अग्नि उसकी तुलना कैसे कर सकती है ? उसकी ज्योति से सूर्य चन्द्रमा और तारे चमक रहे हैं। उसके प्रकाश से विद्युत चमकती है,

अग्नि प्रज्वलित है। प्रत्येक वस्तु जो प्रकाशित है उस में उस की ज्योति है। उस प्रकाश को देखता है जिज्ञासु। आत्मा को मिलता है। वहाँ मिलने के लिए लभ शब्द आया है। पञ्जाबी भाषा में भी ढूँढने और मिलने को 'लभना' कहते हैं परन्तु यह आत्मा मिलता है सत्य, तप, आत्मज्ञान और ब्रह्मचर्य से।

सत्य का तात्पर्य केवल सच्च बोलना नहीं अपितु सब से पहले सत्य आहार, फिर सत्य आचार, तब सत्य विचार और इन तीनों बातों से उत्पन्न होता है सत्य व्यवहार, फिर आता है सत्य भाषण और सब के साथ रहता है सत्य आधार। ये छः सत्य जिसमें हैं उसको आत्मा मिलता है, उस पर प्रभु कृपा होती है।

इसके पश्चात् है तप। परन्तु तप का अर्थ क्या है? हमारे शास्त्रों के अनुसार तप का अर्थ है अपने उद्देश्य की पूर्त्यर्थ द्वन्द्वों को सहन करना! ये द्वन्द्व क्या हैं? सुख और दुःख का एक जोड़ा है, समृद्धि और निर्धनता दूसरा जोड़ा है, मान और अपमान तीसरा, सर्दी और गर्मी चौथा। इस प्रकार कितने ही जोड़े हैं। सुख और कष्ट, वर्षा और धूप, शक्ति सम्पन्नता और विवशता, स्वतन्त्रता और परतन्त्रता, भूख और प्यास, इनमें से एक हो या दूसरा अपने आदर्श या उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए दोनों को सहन करना। दोनों में से किसी के कारण भी रुकना नहीं पीछे नहीं, हटना, डगमगाना नहीं, यह तप है। गालियाँ मिलें या फूलों के हार, मान हो या अपमान, पेट भर भोजन न मिलने वाली निर्धनता हो या भोगविलास की प्रभूत सामग्री, किसी भी समय जीवन के उद्देश्य को न भुलाना यह तप है।

तीसरी वस्तु है सम्यग्ज्ञान, यथार्थज्ञान, आत्मा का ज्ञान। यह समझना कि शरीर क्या है, आत्मा क्या है, दोनों की वास्तविकता को समझ कर आत्मा को शरीर से कुछ अलग कर देने का नाम है सम्यक् ज्ञान। परन्तु देखिये, मैं थोड़ा अलग करने की बात कह रहा

हूँ। पूर्ण रूप से और सदा के लिए अलग करने की बात नहीं कहता। पूरा पृथक् कर दिया तब तो श्मशान ले जाने की आवश्यकता पड़ जायेगी। नहीं ऐसा नहीं करना, नहीं तो आपके नगर के लोग मुझे गालियाँ देंगे कि आपको यह क्या सिखा दिया। ऐसे कई योगी मैंने देखे हैं जो आत्मा को शरीर से बिल्कुल पृथक् भी कर देते हैं। ध्यान का सहारा लेकर शरीर में वापस भी आ जाते हैं परन्तु यह कठिन कार्य है, आप ऐसा मत कीजिये। आत्मा को केवल इस सीमा तक पृथक् कीजिये कि अपने आप को शरीर समझना बन्द कर दीजिये क्योंकि आप शरीर हैं नहीं, आत्मा हैं आप। ज्वर हो जाये तो यह मत कहिए कि मुझे ज्वर हो गया यह समझिये कि शरीर को ज्वर हुआ है। चोट लगे तो यह मत कहिए कि मुझे चोट लगी है, यह समझिये कि शरीर को चोट लगी है। मत कहिये कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मैं युवा हूँ, मैं बच्चा हैं, मैं स्त्री, पुरुष, लड़का अथवा लड़की हूँ, क्यों कि आत्मा कभी बूढ़ा नहीं होता, वह कभी युवा या बच्चा नहीं होता, वह स्त्री पुरुष, लड़की या लड़का भी नहीं। उसका कोई रङ्ग नहीं। पानी गिलास में हो तो गिलास के रूप का हो जाता है, देगची में हो तो देगची के रूप का, थाली में हो तो थाली के रूप का परन्तु वस्तुतः पानी केवल पानी है वह गिलास, थाली या देगची कुछ भी नहीं।

यह सब कुछ मैंने आपको बताया था। इसे सुनने के पश्चात् एक सज्जन मेरे पास आये, बोले, "यह बात अच्छी प्रकार समझ में नहीं आई कि आत्मा शरीर से पृथक् कैसे हो सकता है? उन्हें मैंने बताया कि प्रतिदिन तो आत्मा शरीर से पृथक् होता है फिर इस बात को समझने में कठिनता क्या है? प्रति दिन जब हम गाढ़ निद्रा में खो जाते हैं, जब सारा शरीर सो जाता है, मन भी सो जाता है, स्वप्न भी दिखाई नहीं देते उस समय आत्मा शरीर में बैठा हुआ भी शरीर से पृथक् हो जाता है। परमात्मा से मिलता है। परमात्मा है परम

आनन्द। उस आनन्द को अनुभव करने के पश्चात् मनुष्य जागता है तो कहता है, "आज बहुत अच्छी नींद आई, बहुत आनन्द आया।" प्रश्न यह है कि जब शरीर सो रहा था मैं भी सो रहा था। तब यह आनन्द किस को आया। शरीर को तो आया नहीं। शरीर तो संज्ञाहीन पड़ा था फिर कौन इस आनन्द को लेता रहा? यह आत्मा जो इतनी देर के लिए इस शरीर से पृथक् हो गया था। और फिर यह आनन्द उसको किस समय मिला?

उस समय जब वह शरीर से पृथक् हो गया। परमात्मा से मिल गया। जितनी देर मिला रहा उतनी देर ही आनन्द को अनुभव करता रहा। तब इसका तात्पर्य क्या है? यह कि आत्मा जितनी देर प्रकृति में फँसा रहता है उतनी देर दुःख भोगता है। प्रकृति और शरीर से पृथक् होकर जितनी देर ईश्वर से मिलता है। उतनी देर आनन्द अनुभव करता है।

इस बात को और अच्छी प्रकार समझने के लिए एक कथा सुनिये जो महात्मा नारद ने बहुत प्राचीन काल में सुनाई थी।

पुरंजन नाम का एक राजा था किसी समय में। एक बार उसे इच्छा हुई कि किसी नगरी में जाकर रहूँ। कई नगर उसने देखे, कोई भी उसे पसन्द नहीं आया, तब हिमालय के दक्षिण में उसने एक नौ द्वारों वाली नगरी देखी। यह भी देखा कि उस नगरी में एक सुन्दरी भी रहती है। दस सेवक सदा उसकी सेवा करते हैं। पांच फन वाला एक सर्प सदा उसकी रक्षा करता है उस स्त्री ने भी पुरंजन राजा को देखा। दोनों एक दूसरे को देखते ही एक दूसरे पर मोहित हो गये। पुरंजन राजा इस नगरी में गया। उस स्त्री ने उसको अपना स्वामी बना लिया। दोनों इस नगरी में रहने लगे। रहते रहते वर्षों व्यतीत हो गये। इनके कितने ही बच्चे भी हुए तब अन्त में पुरंजन राजा का शरीर ढीला होने लगा। कितने ही रोगों ने उसे दबा लिया। तब एक दिन दुःखी होकर उसने वह नगरी छोड़ दी।

यह सारी कथा वास्तव में आत्मा की कहानी है। क्योंकि पुरंजन राजा कोई दूसरा राजा नहीं यह आत्मा है और नौ द्वारों वाली जिस नगरी में आकर उसने निवास किया वह नौ द्वारों और आठ चक्रों वाला यह मानव शरीर है। वेद भगवान् ने इस नगरी का वर्णन करते हुए कहा—

अष्ट चक्रा नव द्वारा देवानां पूरयोध्या ।
तस्यां हिरण्मयं कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥

आठ चक्रों और नौ द्वारों वाली यह वह पुरी है जिसे कोई जीत नहीं सकता। इसमें एक चमकते हुए प्रकाश में परमात्मा के प्रकाश से आवृत्त वह आत्मा बैठा रहता है जो अपने आप में सुखरूप है।

यह नगरी कहीं योरूप, अमेरिका या अफ्रीका में नहीं, रूस या चीन में नहीं, तव कहाँ है यह नगरी? क्या भारत में है? क्या यह देहली वह नगरी है? इस में द्वार भी हैं चक्र भी हैं।

हम लोग पाकिस्तान से उजड़ कर यहाँ पहुँचे तो नई दिल्ली में बाबा मिलखा सिंह जी के पास ठहरे। भगवान् उन की आत्मा को शान्ति दें। बहुत प्यार से उन्होंने रक्खा। कोई भी कष्ट होने नहीं दिया। कई दिन रहते हो गये तो एक दिन बाबा जी ने कहा, "कहो जी! नई दिल्ली को देखा आपने! कैसी लगी यह? मैंने कहा, "बाबा जी! छोटे पन में पढ़ा करता था कि नगर में सड़कें बहुत लम्बी हैं, चक्र बहुत बड़े-बड़े। वही यहां भी देखा कि सड़कों की लम्बाई का अन्त नहीं और चक्र इतने हैं कि मस्तिष्क चकराने लगता है।

तव क्या ये चक्रों वाली नई दिल्ली वह नगरी है? नहीं जिस नगरी का वेद भगवान् ने वर्णन किया वह मनुष्य का यह शरीर है। इसके नौ द्वार हैं दो आँखें, दो कान, दो नथने, एक मुख और दो मल और मूत्र त्यागने के द्वार। यह है नौ द्वारों वाली अयोध्या नगरी। इस में आठ चक्र हैं—मूलाधार चक्र, स्वधिष्ठान चक्र, मणिपूरक चक्र,

अनाहत चक्र, हृदय चक्र, विशुद्धि चक्र, आज्ञा चक्र, ब्रह्म चक्र। इस नौ द्वारों और आठ चक्रों वाली नगरी में बुद्धि नामक सुन्दर स्त्री रहती है। दस इन्द्रियाँ उसके दस सेवक हैं और पाँच प्राण पाँच फनों वाला वह सर्प है जो इस नगरी की रक्षा करता है।

इस नगरी में आया है वह पुरंजन राजा—वह जीवात्मा और जब इस नगरी को छोड़ कर निकला तो विदर्भ के राजा के नगर में जाकर एक कन्या के रूप में उत्पन्न हो गया। वह कन्या बहुत रूपवती और गुणवती थी। विदर्भ के राजा ने उसका नाम रक्खा 'अपूर्व कन्या'। वह बड़ी हुई तो 'मलेध्वज' नाम के राजा के साथ उसका विवाह हो गया। दोनों सुख से रहने लगे। परन्तु तभी एक दिन राजा मलेध्वज शीशे में अपना मुख देख रहे थे तो सिर में एक श्वेत केश दिखाई दिया। केश को देख कर वह 'अपूर्व कन्या' से बोले, "रानी! मैं तो अब जंगल में जाकर भगवान् का भजन करूँगा, तुम चाहो तो राज्य को चलाओ।" रानी ने कहा, "आप के बिना मैं कैसे रहूंगी? जहाँ आप वहीं मैं आपके साथ ही चलूँगी।" दोनों वन में पहुँचे आश्रम बना कर रहने लगे। परन्तु समय तो प्रत्येक स्थान पर व्यतीत होता है वन में भी बीतने लगा। अन्ततः वह समय भी आया जब मलेध्वज का देहान्त हो गया। रानी अपूर्व कन्या ने रो रोकर अपना बुरा हाल कर लिया। वन में और तो कोई था नहीं। रोते पीटते उसने वन में से लकड़ियाँ एकत्रित कीं। एक चिता बनाई। मलेध्वज की लाश को उसके ऊपर रख दिया अपने हाथ से उसने चिता को आग लगाई। स्वयं भी उसमें बैठ गई। अग्नि प्रज्वलित हुई। चहुँ ओर लपटें फैलने लगीं। रानी अपूर्वकन्या अब भी रो रही थी। उसके क्रन्दन से वन गूँज रहा था। तभी उन लपटों में से आवाज आई "पुरंजन! ओ पुरंजन!"

रानी ने आश्चर्य से इधर उधर देखा. कोई भी उसे दिखाई नहीं दिया। परन्तु ध्वनि ने फिर "कहा पुरञ्जन! रोना बन्द करो। तुम

स्त्री नहीं हो, रानी नहीं हो, अपूर्व कन्या नहीं हो ?" रानी ने आश्चर्य से कहा, "तुम कौन हो जो आवाज दे रहे हो ?" ध्वनि ने कहा, "पहले यह समझो कि तुम अपूर्व कन्या नहीं हो ?" तुम पुरञ्जन हो। कभी तुम पुरुष थे। अब स्त्री हो वास्तव में तुम स्त्री पुरुष कुछ भी नहीं।" रानी ने कहा, "और तुम कौन हो ?" ध्वनि ने कहा, "मैं तुम्हारा अज्ञात नाम वाला मित्र हूँ। और मैं ही तुम्हारा मित्र हूँ, दूसरा कोई मित्र नहीं, कोई सम्बन्धी नहीं, कोई पति या पत्नी नहीं, पुत्र या पुत्री नहीं।"

तब उस पुरञ्जन ने अपने इस मित्र को पहचाना। तब उसने समझा कि अग्नि उसे जला नहीं सकती। इसके लिए, मलेध्वज के लिए या किसी भी आत्मा के लिए कोई मृत्यु नहीं और सब का मित्र वह एक है जिसे लोग परमात्मा, प्रभु, ईश्वर, परमेश्वर, परम-ब्रह्म, भगवान्, शिव, शङ्कर, नारायण और कितने ही नामों से पुकारते हैं।

यह सारी जीवात्मा की कहानी है जो शरीर के साथ मिल कर कभी अपने आप को अपूर्व कन्या कहता है, कभी पुरञ्जन, कभी मलेध्वज, कभी विदर्भराज, कभी कुछ और। कई प्रकार के, सहस्रों, लाखों, करोड़ों नाम वह अपनाता है, करोड़ों रूप अपनाता है। महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में निरुक्त का एक मन्त्र लिखा है जिसमें आत्मा अपने आपको समझता हुआ कहता है, मुझे पता नहीं कि कितनी छातियों का दूध मैंने पिया है कितनी माताओं की गोद में खेला हूँ, कितनी ही बार पिता बना हूँ, बेटा बना हूं, पति, पत्नी और बहन बना हूँ।

स्मरण रक्खो जब तक अपने आपको शरीर समझ कर इसके जञ्जाल में फँसे रहोगे तब तक ऐसा ही होता रहेगा तब तक प्रभु की कृपा प्राप्त नहीं होगी। प्रभु की कृपा मिलती है सम्यक् ज्ञान से

और सम्यक् ज्ञान यह है कि अपने आपको शरीर समझना बन्द करो। आत्मा का ज्ञान प्राप्त करो। संसार का ज्ञान भी प्राप्त करो मैं इसका विरोध नहीं करता, वेद भी इसका विरोध नहीं करता, उपनिषद् भी नहीं करता। शौनक ऋषि गये महर्षि अङ्गिरा के पास बोले, "महाराज ! मैं वह ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ जिसे प्राप्त करने के पश्चात् कुछ भी जानना शेष न रहे।" तो महर्षि अङ्गिरा ने उन्हें कहा—

आप पर और अपर विद्या को प्राप्त कीजिये। पर विद्या का अर्थ है आध्यात्मिक ज्ञान। और अपर विद्या का अर्थ है भौतिक ज्ञान। दोनों को साथ-साथ चलाओ तब कल्याण होता है। यह बात है जो मैंने इस कथा को आरम्भ करते समय आप से कही थी। आज का विज्ञान यदि मनुष्य को सच्ची शान्ति देने में असफल हुआ है तो क्यों? इसलिए कि उसने 'पर' विद्या को भुला दिया केवल 'अपर' की ओर ध्यान दिया। पर और अपर को वेद भगवान् और उपनिषदों ने विद्या और अविद्या का नाम भी दिया हैं। असम्भूति और सम्भूति का नाम भी दिया है। सम्भव और विनाश का नाम भी दिया है। और ईशोपनिषद् ने इन सब बातों का बहुत सुन्दर वर्णन भी किया है।

ईशोपनिषद् यजुर्वेद का चालीसवां सब से अन्तिम अध्याय है। इसलिए इस ज्ञान को वेदान्त ज्ञान भी कहते हैं अर्थात् ऐसा ज्ञान जो वेद के अन्त में आता है। इस उपनिषद् में अथवा यजुर्वेद के इस अन्तिम अध्याय में विद्या और अविद्या का वर्णन करते हुए कहा—

अन्यदेवाहुर्विद्यायाऽन्यदाहुरविद्यायाः ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ।।

तब इसी पर और अपर को अथवा विद्या और अविद्या को, सम्भूति अथवा सम्भव और विनाश का नाम देकर कहा है—

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥

विचित्र कौतुक है यह। विद्या और अविद्या के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि जो कुछ होता है वह विद्या से होता है। कुछ लोग कहते हैं अविद्या से। दोनों बहुत विद्वान् हैं दोनों बहुत उपदेशक। इसी प्रकार सम्भूति और असम्भूति या असम्भव और विनाश के सम्बन्ध में कुछ लोग कहते हैं कि जो कुछ होता है वह सम्भूति या सम्भव से होना है। दूसरे लोग कहते हैं कि जो कुछ होता है वह असम्भूति या विनाश से होता है। दोनों में बहुत विद्वान् हैं। दोनों में बहुत बड़े उपदेश।

तब मनुष्य करे क्या ? पर को अपनाये या अपर को ? विद्या के मार्ग पर चले या अविद्या के मार्ग पर ? सम्भूति की ओर बढ़े या विनाश की ओर ? वेद साफ और सीधे शब्दों में इसका उत्तर देता है—

विद्याञ्चाविद्याञ्च यस्तद्वेदोभयँ सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥
सम्भूतिञ्च विनाशञ्च यस्तद्वेदोभयँ सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते ॥

सुन ! यदि तू अपना कल्याण चाहता है तो विद्या और अविद्या दोनों को जान। अविद्या से तू मृत्यु को पार कर लेगा, इस जीवन को सुख से बिता लेगा। विद्या से तुझे वह अमृत मिलेगा जिसके पश्चात् जन्म और मृत्यु का संकट समाप्त हो जाता है। सम्भूति और विनाश दोनों को जान। विनाश अर्थात् भौतिक ज्ञान से तू मृत्यु को तर जायेगा अपने जीवन को सुखी बना लेगा और सम्भूति आध्यात्मिक ज्ञान से अमृत को प्राप्त करेगा जिसके पश्चात् आवागमन से छुटकारा मिल जाता है।

यह है वह बात जो महर्षि अङ्गिरा ने शौनक ऋषि को कही कि पर और अपर दोनों विद्याओं को प्राप्त कर। इन्हें प्राप्त करने के पश्चात् तुझे और कुछ जानना शेष नहीं रहेगा।

यह थी सम्यक् ज्ञान की बात। इसके पश्चात् चौथी वस्तु ब्रह्मचर्य—सदा का ब्रह्मचर्य। परन्तु यह सदा का ब्रह्मचर्य क्या हुआ? इसका सीधा अर्थ है कि किसी भी समय अपने मन में खोटे विचार न आने दो। सदा उत्तम विचार मन में लाओ। इसका दूसरा अर्थ है सदा ब्रह्म में विचरो अर्थात् अनुभव करो कि तुम्हारे ऊपर नीचे, आगे पीछे, दायें बायें सब ओर वह ईश्वर है। सदा तुम उसकी गोद में रहो जैसे बच्चा माता की गोद में रहता है। मां की गोद में जैसे बच्चा कोई बुरी बात नहीं करता वैसे ही कोई बुरी बात न करो—यह है ब्रह्मचर्य।

और जब ये चारों बातें हों तब कहीं बाहर जाकर नहीं, अपितु इसी शरीर में उस अत्यन्त लाभदायक और ज्योतियुक्त स्वर्ग को ऐसे तपस्वी लोग देखते हैं जिनकी त्रुटियाँ दूर हो गई हैं, चित्त के दोष समाप्त हो गये हैं।

अब आप कहेंगे कि यह आनन्द स्वामी भी अच्छा व्यक्ति है। इतनी कठिनता से तो यह पता लगा कि ईश्वर की कृपा किस को मिलती है, अब यह चित्त के दोष की बात ले बैठा है। परन्तु देखो भाई! जिस लक्ष्य तक पहुँचना है, वहाँ किसी त्रुटि, किसी न्यूनता, किसी दुरित को लेकर तो पहुँच नहीं सकते।

नाऽयं आत्मा बलहीनेन लभ्यः।

यह आत्मा निर्बल व्यक्ति को मिलता नहीं। जिसमें त्रुटि है, न्यूनता है, बुराई है उसको इसके दर्शन नहीं होते अतः प्रत्येक त्रुटि और बुराई को दूर करना होगा।

चित्त के दोष हैं तीन मल विक्षेप और आवरण। तीनों को दूर करने के पश्चात् ही चित्त में उस आत्मा के दर्शन होते हैं। शीशे पर

धूल की परत चढ़ी हो, मैल लगा हो, वह हिल रहा हो तब उस में क्या अपना मुख आप देख सकते हैं ?

उसे स्वच्छ करना पड़ता है, टिकाना पड़ता है तब जा कर मुख दिखाई देता है इसी प्रकार चित्त की इन तीन त्रुटियों को भी दूर करना पड़ता है।

पहली त्रुटि है मल। इसे दूर करने का उपाय है निष्काम कर्म अथवा निष्काम सेवा। ऐसा कर्म जिसमें लोभ न हो, स्वार्थ न हो। सेवा की भावना से कार्य कीजिये। आप आर्यसमाज में आते हैं, यहाँ दरियाँ बिछाने की सेवा कीजिये। जूतों की सेवा कीजिये परन्तु देखिये कहीं जूतों के लिये सेवा न कीजिये। एक मुसलमान प्रायः किसी मस्जिद में नहीं जाता था एक वार वह मस्जिद में पहुँचा तो मौलवी साहब ने कहा, "क्यों भाई! आज मस्जिद का विचार कैसे आ गया? प्रतीत होता है कि ईश्वर ने तुम्हें शुभ प्रेरणा दी है।" उस व्यक्ति ने कहा—"मौलवी साहब! ईश्वर की प्रेरणा मैं नहीं जानता परन्तु मेरे पाँव ने प्रेरणा अवश्य दी है। दो वर्ष हुये एक जूता यहाँ से उठा कर ले गया था, वह गया है फट अतः दूसरा जूता उठाने आया हूँ।" इस प्रकार जूतों की सेवा न करो। उनकी रक्षा करो। जिससे प्रत्येक व्यक्ति अपना ही जूता ले दूसरे का नहीं। यह सेवा न हो सके तो कोई और उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लो। किसी भी प्रकार कोई निष्काम सेवा अवश्य करो। महर्षि दयानन्द ने आर्यसमाज के नियम बनाये तो छठे नियम में कहा, "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।" सेवा की इससे अधिक उच्च और विशाल भावना आपको कहीं मिलेगी नहीं। हमारे यहाँ इण्डियन नेशनल काँग्रेस है न उसकी सेवा की सीमा भारत की सीमा के साथ समाप्त हो जाती है। जन संघ और हिन्दु महा सभा हैं न? उनकी सीमा हिन्दुओं से आगे नहीं बढ़ती और यह जो राम राज्य परिषद् है

न, इसकी सीमा तो चुनाव तक पहुँच कर ही समाप्त हो जाती है परन्तु आर्यसमाज का कार्य क्षेत्र केवल हिन्दु नहीं केवल भारतवर्ष नहीं अपितु सारा संसार है और संसार का अर्थ केवल यह विश्व नहीं अपितु इससे भी परे फैले हुये सभी तारे सितारे और सौर मण्डल है। कहीं भी किसी भी स्थान पर किसी भी व्यक्ति को कष्ट हो तो आर्य-समाज का कर्तव्य है कि वहाँ जा कर लोक सेवा का कार्य करे। आर्य-समाज का जन्म हुआ तो बहुत भयंकर अवस्था इस देश में थी। विदेशी और विधर्मी यहाँ स्थान स्थान पर स्कूल और कालिज बनाये बैठे थे। वहाँ लड़के जाते थे, लड़कियाँ जाती थीं सब से उनका धर्म छीन लिया जाता था। आर्यसमाज ने इस बात को देखा तो सारे देश में स्कूलों कालिजों और गुरुकुलों का जाल फैला दिया। एक दृढ़ बाँध बना दिया कि अब कोई भी युवक शिक्षा प्राप्त करने के लिए अपने धर्म से पतित न हो। रुपया या नौकरी के लोभ के कारण हो तो हो, शिक्षा के कारण न हो। परन्तु केवल यही कार्य तो आर्य-समाज ने नहीं किया। कहीं भी भूकम्प आ गया, अग्निकाण्ड हुआ, दुर्भिक्ष पड़ा, रोग फैला, तो आर्यसमाज के सेवक वहाँ पहुँच गये। बीकानेर में दुर्भिक्ष पड़ा। माताएँ दो मुट्ठी अन्न के लिए अपने बच्चों को बेचने लगी तो डी० ए० वी० कालेज के विद्यार्थी एक हाथ में अन्न और दूसरे हाथ में पानी लेकर वहाँ पहुँच गये। एक स्थान पर ये विद्यार्थी पहुँचे तो एक ऐसा दृश्य उन्होंने देखा कि आज भी उसे स्मरण करके रोंगटे खड़े होते हैं। रात हो गई थी। निर्जन स्थान था। विद्यार्थियों ने देखा कि दूर एक स्थान पर अग्नि जल रही है। कदाचित् कोई दुःखिया वहाँ होगा, यह विचार कर वे उस स्थान पर पहुँचे तो देखा कि चूल्हा जल रहा है उस पर देगची रक्खी है। चूल्हे के पास एक स्त्री बैठी रो रही है। सेवकों ने पूछा, "देवी तुम रोती क्यों हो ?" परन्तु वह रोती ही रही, बोली नहीं। सेवकों ने फिर पूछा, "मां ! बोल तो सही तू रोती किस लिये है ? तुझे खाने

को चाहिये, कपड़ा चाहिये, रुपया चाहिये ? क्या चाहिये ? कुछ तो बोल । हम सब कुछ देंगे ।" उस स्त्री ने इन की बात सुनी तो दोनों हाथों से सिर पीट लिया और चीखती हुई बोली—

बहुत देर से पहुँचे पहुँचने वालो । मैं कई दिन से भूखी थी । मेरा बच्चा भूख से तंग आ गया था । सेवकों ने कहा, "कहाँ है वह बच्चा ? हमें तो दिखाई नहीं देता ।" उस भाग्यहीन स्त्री ने अपने सिर के बाल नोचते हुए कहा—"मेरा बच्चा इस देगची में है । मैंने उसे काट कर अग्नि पर चढ़ा दिया है जिससे अपने पेट की ज्वाला बुझा सकूँ ।" ऐसे भयंकर दृश्य उस समय दिखाई देते थे ।

और जब काँगड़ा के भूचाल में यात्री दब गये, वहाँ के रहने वाले दब गये, तब आर्यसमाजी तो नहीं दबे थे । फिर भी स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी, महात्मा हंसराज जी और दूसरे महापुरुष आर्य-समाज के सेवकों को लेकर वहाँ पहुँच गये । राय बहादुर ला० सोहन लाल जी भी वहाँ पहुँचे । मुझे भी सौभाग्य मिला इनके साथ सेवा करने का ।

बंगाल में दुर्भिक्ष पड़ा । विहार में भूकम्प आया । कोयटा में भूकम्प ने विनाश जगा दिया । कोहाट में अग्निकाण्ड हुआ । एबटा-बाद भस्म हुआ । मुलतान में प्लेग फैल गई । प्रत्येक स्थान पर आर्य समाज के निस्वार्थ सेवक पहुँच गये । मुलतान में प्लेग का वेग बढ़ा तो नगर के कई भाग वीरान हो गये । उन महान् आत्मा पं० रला-राम जी बजवाड़िया के साथ मैं वहाँ कार्य कर रहा था । नगर चहुँ ओर सूना था । पति पत्नी को छोड़ कर चला गया, पत्नी पति को, भाई ने भाई को छोड़ दिया, पुत्र ने पिता को । एक मुहल्ले से कुछ सेवक सूचना लाये कि एक लाला जी वहाँ रुग्ण हैं । प्लेग हो गई है । घर के सब लोग भाग गये हैं । उन्हीं दिनों पादरी स्टोक्स भी वहाँ कार्य कर रहे थे । पं० रला राम जी ने लाला का हाल सुना तो बोले,

"चलो वहाँ चलेंगे।" उनके साथ मैं वहाँ पहुँचा तो देखा कि बेचारे लाला की दशा बहुत चिन्ताजनक है। पं० रला राम जी को प्लेग के रोगी देखते देखते पर्याप्त अनुभव हो गया था। लाला जी की गिलटी बहुत पक गई थी। वह चमक रही थी। उसे देख कर वे बोले, "आपरेशन के बिना यह व्यक्ति बचेगा नहीं। दौड़कर जाओ, किसी डाक्टर को बुला लाओ।" मैंने कहा, "इस समय डाक्टर कहाँ से मिलेगा?" वे बोले, "डाक्टर नहीं तो कोई जर्राह, कोई नाई बुलाओ।" मैंने कहा, "पण्डित जी इस समय कोई नाई भी नहीं मिलेगा? सब लोग तो भाग गये हैं, यहाँ आयेगा कौन?" वे बोले अच्छा भाई इस घर में ही देखो कदाचित् कोई चाकू या छुरी ही मिल जाये।" मैंने खोजा, वहाँ चाकू या छुरी भी नहीं मिले। पं० जी ने कहा, "अच्छा, स्प्रिट तो तुम्हारे पास है उससे इस गिलटी को स्वच्छ कर दो। मैंने रूई को स्प्रिट में भिगोया, गिलटी को साफ कर दिया। पं० रलाराम जी की दाढ़ी पर्याप्त लम्बी थी। उसे एक हाथ से पीछे हटा कर वे नीचे झुके और दाँतों से इस गिलटी को काट दिया।

यह है निष्काम सेवा की भावना। ऐसी भावना जिस व्यक्ति के मन में होगी, वहाँ चित्त का मैल रहेगा कहाँ? निष्काम सेवा से मन में जो प्रसन्नता होती है उसे वही लोग समझते हैं जो ऐसी सेवा करते हैं। मैं और पं० ऋषि राम जी बंगाल में थे। तभी पता लगा कि बिहार में बहुत भयानक भूकम्प आया है। भूकम्प से होने वाले विनाश की सूचनाएँ अभी आ ही रही थीं कि पूज्य महात्मा हंसराज जी का तार पहुँचा, "बिहार में भूकम्प पीड़ित लोगों की सहायता के लिए वहाँ पहुँचो, मैं दूसरे स्वयं सेवकों को वहाँ भेज रहा हूँ।" हम दोनों वहाँ पहुँचे। सेठ आनन्दी लाल पोद्दार भी वहाँ पहुँच गये थे। सेवा कार्य आरम्भ हुआ। मैं था मुंगेर में। वहाँ हम सेवा का कार्य भी करते थे और दबे हुए लोगों को मलबे से बाहर निकालने

का कार्य भी। मुंगेर का सारा बाजार मलबे का ढेर बन गया था। दुकानदार भी दब गये थे, ग्राहक भी। पहले दिन मलबा उठाया गया तो कई लाशें मिलीं, कुछ जीवित व्यक्ति भी मिले। दूसरे दिन भी लाशों के अतिरिक्त चार जीवित व्यक्ति बाहर निकले। तीसरे दिन भी एक जीवित व्यक्ति मिला। चौथे दिन दो जीवित व्यक्ति मिले परन्तु इसके पश्चात् शव ही शव। चौदह दिन तक शव ही मिलते रहे। हमने समझ लिया कि अब लाशों के अतिरिक्त कुछ मिलेगा नहीं परन्तु पन्द्रहवें दिन एक दूकान का मलवा उठाया तो उसके नीचे से एक जीवित व्यक्ति निकल आया।

मैंने आश्चर्य से उस व्यक्ति की ओर देखा, पूछा, "तू मनुष्य है या भूत?" वह बोला, "नहीं मैं भूत नहीं हूँ जीवित हूँ। आपकी कृपा से बच गया हूँ।" मैंने कहा, "परन्तु अब तक तू जीवित कैसे रहा?" तब उसने अपनी कथा सुनाई। वह साधारण दुकानदार था। केले बेचता था। भूकम्प आया तो दुकान की छत गिरी परन्तु इस प्रकार कि दो बड़े बड़े शहतीर उसके सिर से कुछ ही ऊपर आकर रुक गये। शेष सारी छत शहतीरों के ऊपर गिर पड़ी। उस छत के नीचे दब कर भी उसे चोट नहीं लगी क्योंकि वह उन शहतीरों के नीचे था। थोड़ी देर धूल के कारण उसका श्वाँस रुका परन्तु धूल बैठने के साथ ही वायु स्वच्छ हो गई। वह ठीक प्रकार से श्वास लेने लगा। तभी एक झटका आया। दुकान का फर्श फट गया उसके भीतर से पानी बाहर निकलने लगा। अब केले उसके पास थे। पानी भगवान् ने दे दिया। वह प्रतिदिन केले खाता और पानी पीता रहा। परन्तु अन्त में उसने कहा, अब केले समाप्त हो गये। इतने दिन दबे रहने से मेरा शरीर निर्बल हो गया। मैंने समझा कि मृत्यु आयेगी। परन्तु आज प्रातः से मेरे मलबे में खट खट हो रही थी। मैं समझ नहीं पाया कि यह खट खट कैसी है। पता उस समय लगा

जब आपने मलवे को ऊपर से हटा दिया। यह है ईश्वर की कृपा का चमत्कार।

जाको राखे साइयां मार सके न कोय।
बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय॥

इस चमत्कार को देख कर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, प्रसन्नता से मेरा कितना रक्त बढ़ गया वह आपको कैसे बताऊँ। यह है निष्काम सेवा का फल। चित्त की मैल को दूर करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय। कोई भी सेवा कीजिये, कीजिये अवश्य।

परन्तु यह सेवा निष्काम होनी चाहिये। उन लोगों की भाँति नहीं जो दो चार झाड़ू लेकर कहीं पहुँच जाते हैं और केवल मात्र दिखावे के लिये वहाँ सफाई प्रारम्भ कर देते हैं। ये लोग झाड़ू अवश्य उठाते हैं साथ ही चित्रकार भी बुलवा लेते हैं कि भाई हम झाड़ू उठायें तो हमारा चित्र खेंच लेना।

चित्रकार चित्र खेंचता है उसे लेकर ये भाई दूसरे दिन हिन्दुस्तान टाइम्स, मिलाप अथवा प्रताप के कार्यालय में पहुँच जाते हैं। सम्पादक की अनुनय विनय आरम्भ करते हैं कि हमारा चित्र छाप दीजिये और जब आता है चुनाव का समय तो पहुँच जाते हैं उस चित्र को लेकर उस मुहल्ले में, कहते हैं देखो हमने तुम्हारी सेवा की थी अतः वोट हमें देना। यह तो सेवा नहीं व्यापार है। व्यापार के लिए सेवा मत करो और पूछिये अपने मन से कि—

कभी इमदाद[1] दी तू ने किसी बेकस बेचारे को।
सखी[2] बन कर दिया कुछ तू ने मुफलिस[3] के गुजारे को॥
तसल्ली दी कभी तू ने किसी आफत के मारे को।
कभी तू ने सहारा भी दिया है बे सहारे को॥

१. सहायता, २. दानी, ३. निर्धन।

शरीके[४] दरदेग़म[५] होकर खबर ली बेनवाओं[६] को।
लगी है चोट भी दिल पर सदा सुन कर गदाओं की[७] ॥

इस प्रकार पूछिये अपने मन से। प्रतिदिन पूछिये। यदि कोई दिन विना सेवा के व्यतीत हो जाये तो दूसरे दिन दुगुनी सेवा कीजिये। निष्काम भाव से, निस्वार्थ हो कर सेवा कीजिये फिर देखिये कि चित्त में मल कैसे रहता है।

इसके पश्चात् चित्त का दूसरा दोष है विक्षेप। यह विक्षेप उपासना से दूर होता है। उपासना का अर्थ है पास बैठना ईश्वर के निकट बैठना। और यह ईश्वर के पास बैठना ठीक वैसे ही होता है जैसे अष्टाङ्ग योग।

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में उपासना पर पूरा एक अध्याय लिख दिया है। इसमें वे कहते हैं कि पातञ्जल योग दर्शन के अनुसार ही उपासना हो सकती है और पतञ्जलि का योग-दर्शन है अष्टाङ्ग योग—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। जैसे योग के लिये ये सब के सब आवश्यक हैं वैसे ही उपासना के लिए भी। उपासना का अर्थ है परमात्मा के 'उप' अर्थात् निकट 'आसन' अर्थात् बैठना। तात्पर्य यह है कि प्रेमी और प्रीतम के मध्य कोई पर्दा न रहे, दूरी न रहे, तब प्रेमी के आनन्द का ठिकाना कहाँ होगा? इस बात का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं—

"उपासना का फल ईश्वर के अनुग्रह से प्राप्त होता है। यह उपासना योग वृत्ति सब क्लेशों का नाश करने वाली सब शांति आदि गुणों से पूर्ण है।"

तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि भक्त यदि यह उपासना करे तो कैसे करे? महर्षि ने इसका उत्तर दिया "ईश्वर प्रणिधान" अर्थात्

---

४ सम्मिलित, ५ दुःख, ६ असहाय, ७ फकीर।

पूरी लगन के साथ ईश्वर भक्ति करने से। उनके शब्द हैं।

"जो जगदीश्वर अपनी कृपा से अपने आत्मा का विज्ञान देने वाला है जिसका आश्रय लेना ही मुक्ति के सुख का कारण है और जिसकी अकृपा ही जन्म मरण आदि दुःखों को देने वाली है ऐसे परमेश्वर देव की प्राप्ति के लिए सत्यप्रेम भक्ति रूप सामग्री से हम लोग नित्य भजन करें जिससे दुःख कभी न हो।"

और फिर कहते हैं—

"अब उसकी भक्ति कैसे करनी चाहिये यह आगे लिखते हैं जो ईश्वर का ओंकार नाम है वह पिता और पुत्र के सम्बन्ध की भाँति है उसी नाम का जाप, उसी के अर्थों का विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को ठीक प्रकार प्राप्त करके एकाग्र हो, जिससे उसके हृदय में परमात्म प्रकाश और परमेश्वर की भक्ति बढ़ती जाये। तभी ईश्वर की कृपा होगी।"

परन्तु यह अवस्था कब प्राप्त होगी ? जब ध्यान में ईश्वर की उपासना करो। ध्यान के विना 'ओम्' की उपासना हो नहीं सकती।

ओमित्येवं ध्यायाथात्मानम्।

ओम् आत्मा का ध्यान करना हो तो ध्यान से ही करना होगा और जो लोग निराकार ईश्वर की उपासना करते हैं उनके लिए तो यह ध्यान आवश्यक है। साकार पूजा करने वाले अपने समक्ष मूर्ति रख कर मन बहलाने का खेल खेलते हैं।

जानते हम भी हैं जन्नत की हक़ीक़त लेकिन।
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख्याल अच्छा है॥

मन बहलाने को अच्छी बात है यह, परन्तु वह वस्तुतः ईश्वर की पूजा तो नहीं है। ईश्वर निराकार है और जो निराकार की उपासना करना चाहते हैं वे यदि ध्यान की अवस्था में जाकर न करें तो फिर यह उपासना कभी होगी नहीं।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि ध्यान कैसे हो ? इसके लिए पहली बात यह है कि ध्यान स्वाध्याय से होता है। स्वाध्याय का अर्थ वेद, उपनिषद् और दूसरे उत्तम ग्रन्थों का पढ़ना भी है परन्तु इसके साथ-साथ स्वयं को पढ़ना भी है।

यह हमारा स्थूल शरीर है न ? इस के भीतर एक सूक्ष्म शरीर रहता है। पाँच प्राण, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रायें सोलहवाँ मन और सत्रहवीं बुद्धि—इन सत्रह वस्तुओं का बना है यह सूक्ष्म शरीर जो जन्म-जन्म से हमारे साथ चला आ रहा है। इसमें हमारे कर्म, अकर्म विकर्म सब का लेखा लिखा रहता है। यह है वह चित्रगुप्त जिसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह मरने के पश्चात् उसका पोथा खोल कर बैठ जाता है। मरने के पश्चात् नहीं, हर समय इस चित्रगुप्त का पोथा खुला रहता है। प्रत्येक बात जो आप करते हैं, सोचते हैं, बोलते हैं, सुनते हैं उसमें लिखी जाती है।

आजकल वह छोटी सी मशीन निकली है न ? क्या कहते हैं उसे ? हाँ 'टेप रिकार्ड'—लोग उसे अपने पास रख कर बातें करते रहते हैं अपनी और दूसरे हर व्यक्ति की बात इसमें अंकित हो जाती है। इसके पश्चात् यदि कोई व्यक्ति मना करे और कहे कि अमुक बात तो मैंने नहीं कही। तो यन्त्र को चला कर इसकी बात इस की वाणी में इसको सुना दी जाती है।

परमात्मा ने यह टेप रिकार्ड आरम्भ से ही प्रत्येक प्राणी के भीतर लगा रक्खा है। इस सूक्ष्म शरीर को प्रतिदिन पढ़ना। यह देखना कि कोई बुरा कार्य तो आज नहीं हुआ। कोई अच्छा कार्य हुआ अथवा नहीं। प्रतिदिन इस बात को देखना—यह स्वाध्याय है। इस ग्रन्थ में प्रतिदिन पढ़ो कि आज संसार के भले के लिए, दूसरों के कल्याण के लिए कोई कार्य किया है या नहीं। पढ़ो कि किसी के वस्त्र तो नहीं उतारे। किसी का धन तो नहीं लूटा। किसी दुःखी पर अत्याचार तो नहीं किया ? कोई रिश्वत तो नहीं ली ?

मिलावट तो नहीं की ? यदि आज के इस पृष्ठ पर सब कुछ उत्तम है तो भगवान् का धन्यवाद करो। माँ ! तुम्हारी कृपा से मैं यह श्रेष्ठ कार्य कर पाया हूँ अथवा कर पाई हूँ, मुझे शक्ति देना कि भविष्य में भी ऐसे ही कार्य करूँ, यदि कोई बुरा कार्य हो गया है तो परमात्मा से कहें कि प्रभो ! कृपा करो, मुझे शक्ति दो कि भविष्य में कोई बुरा कार्य न हो।

जो मैं भुल्ल विगाडिया, मैला करीं न चित्त ।
साहब गौराँ लोबूड़िये नफर बिगाड़े नित्त ॥

सावधान हो जाओ कि अब बुरा कार्य नहीं होगा। जो इस ग्रन्थ को प्रतिदिन पढ़ता है वह भी सावधान हो जाता है, बुराई से मुख मोड़ लेता है और जो ऐसा नहीं करता उसे भी एक दिन यह ग्रन्थ अवश्यमेव पढ़ना पड़ता है उस समय जब कि मृत्यु सामने आकर खड़ी हो जाती है। अड़ोसी, पड़ोसी, सम्बन्धी सब पास खड़े होते हैं। श्वास उखड़ गया है। आँखें पथरा गई हैं। डाक्टर और वैद्यों ने उत्तर दे दिया है। आँखों से पानी बहने लगा है उस समय कहते हैं कि 'नीर प्रवाहित हो गया है।' यह नीर क्या है ? मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर का ग्रन्थ खुलता है। एक-एक करके प्रत्येक पृष्ठ मरने वाले के समक्ष आता है। प्रत्येक पृष्ठ पर लिखा है, तू ने यह बुरा कर्म किया। तुमने अमुक कुकर्म किया। फिर यह किया वह किया। उन पृष्ठों को देखता चला जाता है वह। तब अन्तिम पृष्ठ आता है जिस पर आज्ञा लिखी होती है, "अब तेरा "ट्रान्सफर" सूअर के शरीर में होगा, "सर्प के शरीर में होगा।" "विच्छु के शरीर में होगा" "कुत्ते के शरीर में होगा" इत्यादि।

अपनी उस अवस्था को वह देखता है और रोता है। रोये न तो क्या करे ? जब पुस्तक को वह जीवन भर भूला रहा। वह अब उसके सामने है। देखने वाले समझते नहीं, कहते हैं, "नीर जाना आरम्भ हो गया।" अरे नीर जाना आरम्भ नहीं हुआ वह अपने भविष्य को

देखकर चिल्ला रहा है। उसके आँसू बह रहे हैं। परन्तु अब आँसू बहाने से क्या होगा मेरे भाई।

अब पछताए होत क्या जब चिड़िया चुग गईं खेत।

सूक्ष्म शरीर के इस ग्रंथ को जब पढ़ना चाहिए था, जब इसकी त्रुटियों को सुधारना चाहिए था, तब तो ऐसा किया नहीं। अब कुछ हो नहीं सकता। रो या चिल्ला, अब इस पुस्तक में लिखी आज्ञा टलेगी नहीं।

जो लोग प्रतिदिन इस पुस्तक को पढ़ते हैं उनके लिये भी अन्तिम समय यह ग्रन्थ खुलता है। पृष्ठ के पश्चात् पृष्ठ—एक पृष्ठ पर लिखा है तुमने आर्यसमाज में यज्ञशाला बनवाई। दूसरे पर लिखा है तुम ने एक पुस्तकालय खोला, फिर लिखा है तुमने ऋषि लङ्गर आरम्भ किया। तुम ने अनाथ बच्चों के लिये अनाथालय बनवाया। एक फकीर सर्दी से ठिठुर रहा था तुम ने उसे कम्बल दिया। एक व्यक्ति मार्ग भूल गया था तुमने उसके साथ जा कर मार्ग दिखाया। एक व्यक्ति को सन्ध्या नहीं आती थी तुमने उसे सन्ध्या सिखाई। एक व्यक्ति रुग्ण था तुम उसके लिए अपने व्यय पर औषधि लेकर आये। बाजार में केले के छिलके पड़े थे तुम ने इस विचार से उन्हें उठा दिया कि कोई फिसल कर गिर न जाये—और तब अन्तिम पृष्ठ खुलता है उस पर भी ट्रान्सफर की आज्ञा होती है। क्या? यह कि मनुष्य शरीर से तेरा परिवर्तन अब देवता के शरीर में होगा। तब उसके मुख मण्डल पर प्रसन्नता छा जाती है इसलिए कि उसकी उन्नति हो गई। जिसे Promotion मिल गई, जिसका पद ऊँचा हो गया वह रोयेगा क्यों?

जा मरने ते जग डरे मेरे मन आनन्द।
मरबे ही ते पाइये पूर्ण परमानन्द॥
जब तू आया जगत में जग हांसे तू रोय।
करनी ऐसी कर चलो तू हांसे जग रोय॥

वह चाल चल कि उम्र खुशी से कटे तेरी ।
वह काम कर कि याद तुझे सब किया करें ॥
जो जिक्र हो तेरा तो हो जिक्र खैर ही ।
और नाम तेरा लें तो अदब से लिया करें ॥

यह है स्वास्थ्य का फल । चित्त के विक्षेप को दूर करने के लिए साधन है उपासना । उपासना का साधन है ध्यान । ध्यान का पहला साधन है स्वाध्याय ।

और दूसरा साधन क्या है ? यह कि गुण देख दूसरों के, अवगुण न देख । दूसरों के गुण देखोगे तो तुम्हारे गुण संग्रह होते जायेंगे, अवगुण देखोगे तो दूसरों का कुछ बने या न बने तुम्हारे अपने भीतर बुराइयों का भण्डार अवश्य लग जायेगा ।

भ्रमरा मधुमिच्छन्ति व्रणमिच्छन्ति मक्षिकाः ।
सज्जना गुणमिच्छन्ति दोषमिच्छन्ति पामराः ॥

मधु मक्खी मधु खोजती फिरती है परन्तु मक्खी गन्दगी को । सज्जन लोग गुणों को खोजते हैं दुष्ट लोग बुराइयों को । तू मेरे भाई ! मधु मक्षिका बन । गन्दी गली की मक्खी न बन । शहद खोज, गन्दगी नहीं । परन्तु जिस व्यक्ति का गन्दगी खोजने का, प्रत्येक स्थान पर त्रुटियाँ और बुराइयाँ देखने की, हर समय आलोचना करने का स्वभाव हो गया है वह ऐसा करेगा किस प्रकार ? उसे तो शुभ में भी अशुभ दृष्टिगोचर होगा, अमृत के पास जाकर भी विष मिलेगा ।

मैं छोटा सा था । अपने पिताजी के साथ खड़ा था गाँव से बाहर । उन्होंने कहा, "जा गाय को पानी पिला ला ।" मैं साथ वाले जोहड़ में ले गया । किनारे का पानी गन्दला था । गाय को अच्छा नहीं लगा । वह तनिक आगे बढ़ी । आगे जाकर पानी पीने लगी । बाहर आई तो मैंने देखा कि उसके थनों के साथ कोई काली काली वस्तु लगी है और तेजता से मोटी होती जाती है । मैंने समझा ये गाय क

दूध पिये जाती है। पुकार कर बोला, "पिता जी ! पिता जी ! पिता जी वहाँ आये बोले, "क्या बात है?" मैंने कहा, "ये देखिये, ये सारा दूध पिये जाती हैं।" उन्होंने देखा, बोले, "नहीं ये दूध नहीं पीती। ये जोंकें हैं रक्त चूसती हैं।" मैंने कहा, "दूध के भण्डार के पास आकर रक्त चूसती हैं?" वे बोले, "हाँ जोंक रक्त ही पीती हैं दूध नहीं पीती।"

ऐसा न कर मेरे भाई ! जोंक न बन ! बछड़ा बन। रक्त न चूस, दूध पी। हर समय दूसरों के अवगुण न देख गुण देख।

मैं कथा कह रहा था आर्यसमाज करौलबाग में। एक सज्जन रात के समय दूध पिलाने के लिए मुझे अपने घर ले गये। घर में जाकर बैठे ही थे कि बिजली फेल हो गई। अन्धकार हो गया। अब वे सज्जन लगे सरकार को कोसने—"कैसी सरकार है यह। जब से इनका राज्य हुआ तब से कोई कार्य ठीक प्रकार नहीं होता। अब देखो बिजली ही चली गई। मैंने कहा, "राज्य को कोसने से कुछ बनेगा नहीं, आपके घर में कोई मोमबत्ती आदि होगी उसे जला लीजिये, कार्य चल जायेगा।" तब उन्होंने पुकारा, "ओ कुक्कू की माँ ! दियासलाई तो ला। देखूँ मोमबत्ती कहाँ है।" अब कुक्कू की माँ ने दीपशलाका ढूँढनी आरम्भ की। अन्धेरे में इधर देखा उधर देखा कहीं भी उसे दियासलाई नहीं मिली। अन्ततः सिगरेट पीने वाले एक सज्जन से दियासलाई ली गई। मामबत्ती की खोज आरम्भ हुई। इस अलमारी में, उस अलमारी में, यहाँ वहाँ। सलाइयाँ एक-एक करके घिसाई जा रही हैं, मोमबत्ती की खोज हो रही है परन्तु मोमबत्ती है कि मिलने का नाम ही नहीं लेती। दियासलाई वाले ने कहा, "तीलियां तनिक देख कर खर्च कीजियें, ऐसा न हो कि मोमबत्ती मिले तो डिबिया में तीलियां समाप्त हो जांयें।" इस भाग दौड़ में बिजली फिर आ गई। प्रकाश हो गया। वे सज्जन बैठे, फिर बोले, "राज्य का प्रबन्ध ही सारा खराब है। जिस विभाग को देखो

उसी में त्रुटि है। कितना समय इन लोगों ने नष्ट कर दिया।" मैंने यह आलोचना सुनी तो हँसते हुए कहा, "राज्य का प्रबन्ध तो अच्छा है या बुरा, परन्तु तुम अपने घर का प्रबन्ध तो देखो, न दीपशालका रखने का ठिकाना है न मोमबत्ती रखने का स्थान और कोसा जाता है राज्य को। राज्य क्या तुम्हारे घर का भी प्रबन्ध करेगा ?"

यह है हमारा स्वभाव। देखनी चाहिये अपनी त्रुटि, हम दूसरों की त्रुटियाँ ही देखते रहते हैं—

बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय।
मन जो अपना देखिया, मुझ से बुरा न कोय॥

अपनी त्रुटियों को दूर करने के लिए अपने दोषों को देख। दूसरों के दोषों को देखने से अपने अवगुण दूर नहीं होते। और फिर यह भी देखिये कि त्रुटियाँ और कमियाँ तो प्रत्येक में हैं। सम्पूर्ण गुण तो केवल ईश्वर में हैं। यदि हमारे अन्दर भी केवल गुण ही गुण होते, अवगुण न होते, त्रुटियाँ न होतीं, दोष न होते तो हम इस मृत्यु लोक में आते ही क्यों ?

एक था राजा। अपने राज्य में उसने नियम बना रक्खा था कि जो कोई चोरी करेगा उसे फाँसी का दण्ड दिया जायेगा। एक दिन राजप्रासाद में चोरी हो गई। छानबीन हुई। तीन व्यक्ति पकड़े गये। जुर्म प्रमाणित हो गया। तीनों को फाँसी देने की आज्ञा हुई। राजा के व्यक्ति उन्हें फाँसी देने ले गये। दो व्यक्तियों को उन्होंने फाँसी दे दी। तीसरे को देने लगे तो उसने कहा, "ठहरो ! फाँसी तो तुम दोगे ही परन्तु मुझे एक रहस्य ज्ञात है यह किसी को बता देना चाहता हूँ जिससे संसार का कल्याण हो।" लोगों ने पूछा, "क्या रहस्य है ?" उसने कहा, "मैं लोहे से सोना बनाना जानता हूँ।" राजा के व्यक्तियों ने कहा, "अच्छी बात है, बतला लोहे से स्वर्ण किस प्रकार बनता है ?" चोर ने कहा, "तुम्हें नहीं केवल राजा को

बता सकता हूँ ।" यह बात राजा के कान में भी पहुँची । उसके मुख में भी पानी भर आया । चोर को बुला कर उसने पूछा, "क्यों भाई ! क्या यह सत्य है कि तू लोहे का सोना बना देता है ।" उस चोर ने कहा, "हाँ महाराज ! मैं एक बूटी जानता हूँ उसे लोहे पर डाल देने से सोना बन जायेगा ।" राजा ने पूछा, "कितने लोहे का स्वर्ण बना सकता है तू ?" तो उसने उत्तर दिया जितना भी आप चाहें । परन्तु बूटी मिलती है जङ्गल में । आप मेरे साथ दो आदमी भेज दीजिये मैं बूटी लेकर आता हूँ । आप लोहा एकत्रित कराइये । राज्य भर के लोगों को भी एकत्रित कराइये । मैं सब के समक्ष सोना बना कर दिखाऊंगा । बस फिर क्या था । वह गया सिपाहियों के साथ वन में । यहाँ राजा के महल के बाहर राज्य भर का लोहा इकट्ठा होने लगा । जिसके पास जो वस्तु लोहे की थी, वह उसको उठा लाया । कई कई मन के बाट, तराजू, लोहे की छड़ियाँ, लोहे के शहतीर, चिमटे, खम्बे, बर्तन, बाल्टियाँ, डोल सब इकट्ठे हो गये । कई लोगों को दूसरी वस्तुएं नहीं मिलीं तो वे ताले, चाबियाँ, कील, सलाइयाँ ही उठा लाये । सभा लग गई । सब लोग एकत्रित हो गये । कृषक भी आ गये, दुकानदार भी, ठेकेदार भी आ गये, पदाधिकारी भी आ गये, कुम्हार भी आ गये, व्यापारी भी, मन्त्री और राज्य कर्मचारी सब इकट्ठे हो गये । तभी वह व्यक्ति जङ्गल से बूटी लेकर आ गया । हाथ से मल कर बूटी उस ने एक मेज पर रख दी और बोला, "महाराज ! यह है बूटी । इसको लोहे के इस ढेर पर डाल देने से सोना बन जायेगा परन्तु शर्त यह है कि बूटी को उठा कर वह व्यक्ति लोहे पर डाले जिसने कभी जीवन में चोरी न की हो । और मुझे तो आप जानते हैं । मुझे तो चोरी के कारण फाँसी का दण्ड मिला है । मैं तो यह कर नहीं सकता । बड़े बड़े मन्त्री, पदाधिकारी, राज्यकर्मचारी और अन्य लोग यहाँ विद्यमान हैं उनमें से कई ऐसे मिल जायेंगे जो इस बूटी को लोहे पर डाल सकें । उन्हें कहें कि बूटी को उठायें

और लोहे पर डाल दें।" राजा ने कहा, "हाँ ऐसा तो हो सकता है।" तब वह किसान और भूस्वामियों की ओर देख कर बोला, "क्यों भाई कृषको और भूस्वामियो ! तुम में से ऐसा कौन है जिसने जीवन में कभी चोरी न की हो।" कृषक थोड़ी देर चुप रहे। उनके चौधरी ने उठ कर कहा, "महाराज ! आप तो जानते हैं हम लोग अपने पशुओं को खिलाने के लिये एक दूसरे के खेत से चारा काट लेते हैं फिर यह चोरी तो हो गई। हम में ऐसा व्यक्ति कहाँ मिलेगा ! राजा ने दुकानदारों की ओर देखा, बोले, "क्यों भाई ! तुम में से ऐसा व्यक्ति तो कोई होगा, जिसने कभी चोरी नहीं की हो।" दुकानदारों के नेता ने कहा, "महाराज ! हम लोग तो अपनी करतूत के लिये प्रसिद्ध हैं। किसी वस्तु को एक सेर तोलते हैं तो घर जाकर १५ छटांक निकलती है। चोरी तो हो गई। हम में से कौन कहेगा कि उसने जीवन में कभी चोरी नहीं की।" राजा ने ठेकेदारों की ओर देखा, बोले, "तुम"। ठेकेदारों ने कहा, "महाराज ! हमारी तो प्रतिदिन रिपोर्ट होती रहती है। हम पुल बनाने का ठेका लेते हैं। उसमें सीमेंट के स्थान पर रेत डाल देते हैं। दो ही वर्षाओं के पश्चात् पुल टूट जाता है फिर कैसे कहें कि हमने चोरी नहीं की।" राजा ने राज्य-कर्मचारियों की ओर देखा। वे बोले, "महाराज ! आप वेतन देते हैं थोड़ा फिर भी हम बड़ी बड़ी कोठियाँ बनवाते हैं वे जिस प्रकार बनती हैं वे आप भी जानते हैं और हम भी, फिर कैसे कहें कि हमने चोरी नहीं की।" राजा ने मन्त्रियों की ओर देखा। उन्होंने भी यह उत्तर दिया। अब राजा जी घबराये। अपने छोटे भाई की ओर देख कर बोले, "तुम ही उठो। तुमने कभी चोरी नहीं की।" भाई ने कहा, "महाराज ! सच्ची बात यह है कि एक बार चोरी मैंने भी की थी। मैं जब प्रिंस कालेज में पढ़ता था तो मेरा मित्र एक बहुत ही सुन्दर पुस्तक खरीद कर लाया। बहुत सुन्दर चित्रों की पुस्तक थी। वह मित्र दूसरे कमरे में गया तो मैं उसकी पुस्तक उठा कर चला आया। मुझ से

यह कार्य नहीं होगा।" राजा ने तंग आकर कहा, "तब मैं ही इस बूटी को उठा कर लोहे पर डालता हूँ।" परन्तु तभी वह रुक गया। बोला, "स्मरण पड़ता है कि चोरी तो एक बार मैंने भी की थी। मुझे हो गया था म्यादी ज्वर। डाक्टर ने कुछ भी खाने से मना कर दिया था। अपनी माता के पास मैंने देखे पेड़े। हठ की कि पेड़े खाऊँगा। माता ने मना करते हुए कहा, "नहीं, तुझे डाक्टर ने मना कर दिया है" और पेड़ों को अलमारी में रख कर वह दूसरे कमरे में चली गई। उनकी अनुपस्थिति में मैं चुपके से उठा, अलमारी से पेड़े उठा कर खा गया। माता जी को बताया नहीं परन्तु चोरी तो मैंने भी की।"

चोर कहने लगा, "जब सारे ही चोर हैं तो मुझ अकेले को ही फाँसी क्यों? सब को दो।"

नहीं भाई मेरे! दोष और त्रुटि से कोई पृथक् नहीं। दूसरों के गुण देखो उनके दोष न देखो।

ध्यान की अवस्था और प्रभु को पाने के लिए पहली आवश्यक बात है स्वाध्याय। दूसरी आवश्यक बात है दूसरे के गुणों को देखना अवगुणों और दोषों को नहीं। और तीसरी आवश्यक बात है सदा प्रसन्न रहना। आज कल किसी को पूछो, "क्यों भाई! कैसे हो?" तो वह मुख लम्बा करके कहता है, "कट रही है?" जैसे केन्द्रीय जेल में पड़े हों। यह क्या बात हुई कि मनुष्य सदा मुँह बिगाड़ कर रोता ही रहे। यह मानव जीवन मिला तो रोने के लिए नहीं। बहुत मूल्यवान् वस्तु है यह। महाभारत में आता है—

गुह्य ब्रह्म तदिदं ब्रवीमि नहि मानुषाच्छ्रेष्ठतरं हि किञ्चित्।

सुनो बाबा! तुम्हें रहस्य की बात कहता हूँ कि मनुष्य शरीर से मूल्यवान् और कुछ भी नहीं है।

इतना सुन्दर शरीर दिया ईश्वर ने। संसार इसे 'सर्वश्रेष्ठ प्राणी' कहता है और तू कहता है कि "कट रही है।" सुनो, सुनो, यह शरीर बहुत पुण्य कर्म से ईश्वर की महती अनुकम्पा से मिलता है। तीन वस्तुओं का मिलना बहुत दुर्लभ कहा है हमारे शास्त्रों ने—मनुष्य

का शरीर, मुक्ति की कामना और साधु की संगति। मुक्ति की कामना के सम्बन्ध में जगद्गुरु शंकराचार्य कहते हैं कि "ऐसी इच्छा होनी चाहिए जैसे पानी के बाहर आई मछली पानी में वापस जाने को तड़पती है, बेचैन होती है।" जगद्गुरु महर्षि दयानन्द इस इच्छा के सम्बन्ध में कहते हैं, "जैसे कई दिन का भूखा और प्यासा व्यक्ति अमृत भरे भोजन के लिए तरसता है उसी प्रकार भगवान् के लिए तड़पन उत्पन्न हो तो समझना मुक्ति की इच्छा जागी है।" जिस प्रकार मुक्ति की यह इच्छा कठिनता से मिलती है और सच्चे साधु संन्यासी का सङ्ग कठिनता से मिलता है। इसी प्रकार मनुष्य का यह शरीर भी बहुत कठिनता से मिलता है। इसे पाकर प्रसन्न रहना चाहिए हर समय रोते नहीं रहना चाहिए। जो व्यक्ति सदा प्रसन्न रहता है उसकी बुद्धि निर्मल होती है जिसकी बुद्धि निर्मल हो उसको प्रभु के दर्शन होते हैं, उसकी कृपा मिलती है। सदैव दुःखी रहने से रोने और चिल्लाने से बुद्धि के सूक्ष्म तत्त्व जल जाते हैं। उनके जल जाने से मैंने देखा है कि एक ही रात्रि में लोगों का रूप परिवर्तित हो गया है। रणवीर जब फाँसी की कोठड़ी में था तो मैं उसे उपनिषद् पढ़ाने जाया करता था। फाँसी वालों को मौलवी या पण्डित से उपदेश सुनने की आज्ञा मिल जाती है। रणवीर को भी आज्ञा मिली। मैं उसे उपनिषद् पढ़ाने जाता। उसकी कोठड़ी के सामने एक और कोठड़ी में फाँसी का एक और वन्दी था। दो कत्ल उसने किये थे। वकीलों ने उसे विश्वास दिलाया कि वह छूट जायेगा अतः वह प्रसन्न रहता था। बहुत अच्छे स्वभाव का व्यक्ति था वह एक गीत गाया करता था—

तू बख्श गुनाह हुण मेरे।
मैं खादे कुक्कड़ तेरे॥

अब तक भी उसका वह गाना मुझे स्मरण है। परन्तु देखिये अब समय हो गया है पूरा, अतः शेष कल।

॥ ओम् तत् सत् ॥

सातवाँ दिन

मेरी प्यारी माताओ तथा सज्जनो !

आज सातवाँ और अन्तिम दिन है, इस कथा का। उपनिषदों का सन्देश आपके सामने रखने का प्रयत्न मैं कर रहा हूँ। किसी एक उपनिषद् को मैं ने नहीं लिया। सभी उपनिषदों का जो सार है उसे मैंने आपके समक्ष रक्खा। और यह सार क्या है? यह सन्देश क्या है? यह कि ईश्वर को जाने विना, उस परब्रह्म परमात्मा को पाये विना यदि यह शरीर छूट गया तो बहुत विनाश की बात है, बहुत हानि की बात, क्योंकि यह मानव शरीर ही वह शरीर है जिस में ईश्वर को जाना जा सकता है। यह छूट जाये तो फिर ८४ लाख चक्र आरम्भ हो जाता है।

तब उपनिषद् से ही मैंने आप को बताया कि उस परब्रह्म का दर्शन तब तक नहीं होता जब तक वह स्वयं ही कृपा न करें, फिर यह भी बताया कि किन लोगों को यह कृपा नहीं मिलती। वे जिन्होंने बुरे चलन का त्याग नहीं किया, वे जिन्होंने इन्द्रियों पर संयम नहीं किया, वे जिनके चित्त में एकाग्रता नहीं आई, वे जिन्होंने तृष्णा का त्याग नहीं किया और अन्त में वे जिन्होंने प्रज्ञान अर्थात् इन्द्र के ज्ञान को आत्मज्ञान को प्राप्त नहीं किया।

फिर उपनिषद् से ही मैंने आप को बतलाया कि यह कृपा किन को मिलती है। उन्हें जो सत्य के मार्ग पर चलते हैं। जिनका आहार सत्य, विचार सत्य, आचार सत्य, व्यवहार सत्य, वचन सत्य और आधार सत्य है। उन्हें जो तप के मार्ग पर चलते हैं। द्वन्द्व अर्थात् जोड़ों को सहन करते हैं। जो सुख और दुःख में, सर्दी और गर्मी में, सम्पत्ति और विपत्ति में, मान और अपमान में, फूलों की शय्या पर

अथवा काँटों के बिछौने पर प्रत्येक अवस्था में धैर्यपूर्वक चलते रहते हैं।

आज एक सज्जन मिले। कहने लगे तप के सम्बन्ध में आप की बात अच्छी प्रकार समझ में नहीं आई अब भी शङ्का होती है कि तप क्या है? यदि दूसरे भाइयों के मन में भी शङ्का होती हो तो सुनिये। तप का अर्थ है सहनशीलता। यदि कोई प्रशंसा करे तो फूल कर कुप्पा नहीं हो जाना, यदि गालियाँ दे तो सूख कर काँटा नहीं हो जाना, दोनों अवस्थाओं में एक सा रहना। यह है सहन-शीलता। और जिसमें यह सहनशक्ति उत्पन्न हो जाती है उसके जीवन में एक अनोखा मिठास, एक अद्भुत सन्तोष और एक विचित्र प्रकाश आ जाता है।

महर्षि दयानन्द ठहरे हुए थे फर्रुखाबाद में गङ्गा के तट पर। उन से थोड़ी ही दूर एक और झोंपड़ी में एक दूसरा साधु भी ठहरा हुआ था प्रतिदिन वह देव दयानन्द की कुटिया के पास आकर उन्हें गालियाँ देता। पौन पौन, एक एक घण्टा उनके समक्ष खड़ा रह कर वह गालियाँ देता रहता। देव दयानन्द सुनते और मुस्करा देते। कोई भी उत्तर नहीं देते थे। कई बार उनके भक्तों ने कहा, "महा-राज! आपकी आज्ञा हो तो इस दुष्ट को सीधा कर दें।" महाराज सदा कहते, "नहीं, वह स्वयं ही सीधा हो जायेगा।" एक दिन किसी सज्जन ने फलों का एक बहुत बड़ा टोकरा महर्षि के पास भेजा। महर्षि ने टोकरे से बहुत अच्छे अच्छे फल निकाले, उन्हें एक कपड़े में बाँधा और एक व्यक्ति से बोले, "ये फल उस साधु को दे आओ जो उस परली कुटी में रहता है और जो प्रति दिन यहाँ आकर कृपा करता है।" उस व्यक्ति ने कहा, "परन्तु वह तो आपको गालियाँ देता है।" महर्षि बोले, "हाँ उसी को दे आओ।" वह सज्जन फल लेकर उस साधु के पास गये। जाकर बोले, "साधु बाबा! ये फल स्वामी दयानन्द ने आपके लिए दिये हैं।" साधु ने दयानन्द का

नाम सुनते ही कहा, "अरे यह प्रातःकाल किस का नाम ले दिया तू ने! पता नहीं आज भोजन भी मिलेगा या नहीं। चला जा यहाँ से मेरे लिए नहीं भेजे होंगे किसी दूसरे के लिए भेजे होंगे। मैं तो प्रतिदिन उसे गालियाँ देता हूँ।" उस व्यक्ति ने महर्षि के पास आकर यही बात कही। महर्षि बोले, "नहीं, तुम फिर उसके पास जाओ। उसे कहो कि आप प्रतिदिन जो अमृत वर्षा करते हो उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति लगती है। ये फल इसलिए भेजे हैं कि इन्हें खाइये, इन का रस पीजिये जिससे आप की शक्ति बनी रहे और आपकी अमृत वर्षा में कमी न आ जाये।" उस व्यक्ति ने साधु के पास जाकर वही बात कह दी, "सन्त जी महाराज! ये फल स्वामी दयानन्द ने आप ही के लिए भेजे हैं और कहा है कि आप प्रतिदिन जो अमृत वर्षा उन पर करते हैं उसमें आपकी पर्याप्त शक्ति व्यय होती है। इन फलों का प्रयोग कीजिये जिस से आप की शक्ति बनी रहे और आप की अमृत वर्षा में न्यूनता न आये।" साधु ने यह सुना तो घड़ों पानी उसके ऊपर पड़ गया। निकला अपनी कुटिया से, दौड़ता हुआ पहुँचा महर्षि के पास, उनके चरणों पर गिर पड़ा, बोला, "महाराज! क्षमा करो मुझे। मैंने आपको मनुष्य समझा था आप तो देवता हैं।" यह है सहनशीलता का जादू।

यह जादू की शक्ति बुरे से बुरे व्यक्ति को बदल देती है। सन्त सुकरात का नाम तो आपने सुना है! बड़े श्रेष्ठ महात्मा थे वे, परन्तु दुर्भाग्य से उनका विवाह हो गया एक ऐसी स्त्री के साथ जो बड़ी ताड़का थी। सर्वदा क्रुद्ध रहती थी। बिना गाली बात ही नहीं करती थी। सुकरात के शिष्यों ने कई बार कहा, "गुरु जी! यह कैसा संकट आप ने पल्ले बाँध रक्खा है। इसे छोड़िये। हम आपका दूसरा विवाह करा देते हैं।" सन्त सुकरात कहते, "नहीं ऐसी बात भूल कर भी नहीं कहना। यह मेरी परीक्षा का साधन है। यह मेरी

परीक्षा है कि मैंने क्रोध पर नियन्त्रण पाया या नहीं। मेरे अन्दर सहनशीलता है या नहीं। मुझे यही पत्नी पसन्द है, मुझे दूसरी नहीं चाहिये। एक दिन वे बाहर से आये, प्रतिदिन की भाँति अपने कमरे में गये, एक पुस्तक उठा कर पढ़ने लगे। पत्नी ने देखा तो क्रोधाग्नि भड़क उठी, बड़बड़ाती हुई बोली, "बस बाहर से आते ही पुस्तक उठा कर बैठ गये, जैसे मुझ से नहीं किताब से ही विवाह हुआ है।" दो चार गालियाँ भी दीं उसने। सुकरात ने कोई उत्तर नहीं दिया, पुस्तक पढ़ते रहे। इस शान्ति से देवी जी का पारा और बढ़ गया। कमरे में पहुँची, पुस्तक छीनी और परे फेंक दी। सुकरात फिर भी नहीं बोले। उन्होंने दूसरी पुस्तक उठाई और पढ़ने लगे। देवी जी ने गालियों के बांध का द्वार खोल दिया। गालियों की बाढ़ वह निकली परन्तु सुकरात फिर भी चुप रहे जैसे कुछ सुना ही नहीं। देवी ने दूसरी पुस्तक को पकड़ा, उठा कर बाहर फेंक दिया सुकरात मुस्कराते रहे, किया कुछ भी नहीं। अब तो पत्नी का पारा १०६।१०७ डिगरी तक जा पहुँचा। बाहर गली में गई, वहाँ सड़ा हुआ कीचड़ पड़ा था, उसे उठा लाई। पानी के घड़े में उसे घोला और तीव्रता से आकर सारा घड़ा सुकरात के ऊपर उण्डेल दिया। तब महात्मा सुकरात ने हँस कर कहा—

हम ने तो सुना था जो गर्जते हैं वे बरसते नहीं, आज तो गर्जने वाले भी बरस गये। देवी ने यह सुना तो उसकी आँखें खुल गईं। गिर पड़ी उनके चरणों में, बोली, "महात्मन्! मुझे क्षमा करो। मैंने आज तक आपको पहचाना नहीं था।"

जादू है जादू यह सहनशीलता। इससे वे लोग भी बदल जाते हैं जो दूसरे किसी भी उपदेश से नहीं बदलते। जिन परिवारों में सहनशीलता है। वहाँ दुःख और निर्धनता के होने पर भी स्वर्ग बना रहता है और जहाँ यह सहनशक्ति नहीं वहाँ स्वर्ग भी नरक में परिवर्तित हो जाता है। यह है तप की बात।

तीसरी बात है सम्यक् ज्ञान। आत्मा का ज्ञान। भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक उन्नति का ज्ञान। जिसे यह प्राप्त है उस पर प्रभु की कृपा होती है।

चौथी बात है ब्रह्मचर्य। नित्य का सदा का ब्रह्मचर्य। कल इसकी व्याख्या कर दी थी। ये चार बातें सत्य, तप, यथार्थ ज्ञान और सदा का ब्रह्मचर्य जिसमें हो उसे भगवान् का दर्शन मिलता है। जब अन्तः-करण के तीन दोष दूर हो जायें। अन्तःकरण का अर्थ है मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। इसको अन्तःकरण चतुष्टय कहते हैं। इसके दोष हैं तीन—मल, विक्षेप और आवरण। इन दोषों का वर्णन करते हुए हमने देखा कि मल निष्काम सेवा से दूर होता है। विक्षेप उपा-सना से दूर होता है। उपासना का अर्थ है ध्यानावस्था में जाकर प्रभु के समीप बैठना। फिर मैं आप को बता रहा था कि इस ध्यानावस्था को प्राप्त करने का उपाय क्या है? पहला उपाय है स्वाध्याय। अपने आप को पढ़ना। फिर गुणग्राही बनना। लोगों के गुणों को देखना अवगुणों को नहीं और फिर सदा प्रसन्न रहना। किसी भी समय दुःखी न होना, चिन्ता न करना। यह दुःख और चिन्ता मनुष्य का क्या कर देती है यह मैं आपको सुना रहा था। रणवीर था फाँसी की कोठड़ी में। उसके सामने वाली कोठड़ी में एक युवक रहता था। वह सदा हँसता रहता था, कई बार गाया भी करता था। परन्तु एक दिन मैं वहाँ गया तो देखा कि सामने वाली कोठड़ी में वह युवक नहीं है एक बूढ़ा व्यक्ति बैठा है। सिर के बाल श्वेत हैं। दाढ़ी भी सफेद है। आँखों की भौएँ भी सफेद हैं। मैंने रणवीर से पूछा, "तुम्हारे सामने वाली कोठड़ी में जो युवक था कहाँ गया?" रणवीर ने कहा, "वही तो है जो सामने बैठा है।" मैंने आश्चर्य से कहा, "परन्तु यह तो बूढ़ा है।" रणवीर ने कहा, कल इस की अपील का निर्णय हो गया। अपील अस्वीकृत हो गई। तभी यह चिन्ता में डूब गया। यह मौन हो गया। बुलाने पर भी ऊँची आवाज में बोलता नहीं और एक

ही रात्रि में इसके सारे केश श्वेत हो गये हैं।

यह है चिन्ता का दुष्परिणाम। अतः बचो, बचो इस दुश्चिन्ता से। सदा प्रसन्न रहो। स्मरण रक्खो यह संसार कभी एक अवस्था में रहता नहीं। प्रातः सायं, रात दिन, अन्धकार प्रकाश, कई अवस्थाएँ इसमें प्रतिदिन आती हैं। सम्पत्ति और विपत्ति, मान और अपमान, हानि और लाभ, मान और अपमान सब इसकी आवश्यकताएँ हैं। कोई भी अवस्था सदा नहीं रहती अतः घबराओ नहीं, चिन्ता मत करो, प्रसन्न रहो। यहाँ शैशव है, यौवन है, वृद्धावस्था है, मृत्यु है फिर जीवन है, फिर मृत्यु है, फिर जीवन है। घबराओ नहीं इन बातों से—

दिल दे तो इस मिज़ाज का परवरदिगार दे।
जो रंज की घड़ियाँ भी खुशी में गुजार दे॥

संकट किस पर नहीं आते। भगवान् राम इतने बड़े महाराज, इतने बड़े महात्मा, उन्हें भी १४ वर्ष का बनवास मिला। माता सीता इतनी पतिव्रता, इतनी साध्वी, इतनी पवित्र—उन्हें भी रावण की कैद में रहना पड़ा। संकट सब पर आते हैं। जो उन्हें हँसते हुए सहन करे, वही वीर। वेद भगवान् में भी यही प्रार्थना आई है—

विश्वदानिं सुमनसा स्याम।

हे प्रभो! ऐसी कृपा करो कि मैं सदा प्रसन्न मन वाला बना रहूँ। वेद में प्रत्येक स्थान पर प्रसन्नता के लिए ही प्रार्थना है। २०,३०० मन्त्र हैं वेद भगवान् में किसी एक मन्त्र में भी रोने की बात नहीं लिखी। स्थान-स्थान पर यही लिखा है मस्त रहो, प्रसन्न रहो, हँसते रहो।

परन्तु अब यह हँसना भी हम से छूट गया है अंग्रेज आया था न यहाँ। अपने साथ वह एक वस्तु लाया जिसे 'ऐटिकेट' कहते हैं अर्थात् सामाजिक सभ्यता—सभा में बैठने की विधि। इस विधि से हम ने सीखा कि दूसरे व्यक्तियों के समक्ष ऊँचा नहीं हँसना चाहिये। अच्छा

भाई यदि यही सभ्यता है तो दूसरों के समक्ष सभा में मत हँसो। परन्तु दिन में किसी समय तो हँसो और कोई स्थान न मिले तो स्नानागार में ही जाकर खुल कर हँसो परन्तु एक बार हँसो अवश्य। खूब जोर से, पूर्ण शक्ति के साथ हँसो। शरीर में ७२ करोड़, ७२ लाख, दस सहस्र दो सौ एक नाड़ियाँ हैं। ध्यानावस्था के अनुसन्धान भवन में जाकर हमारे ऋषियों ने एक एक नाड़ी को गिना, एक एक नाड़ी के कार्य को देखा। ये नाड़ियाँ ठीक प्रकार से कार्य उस समय करती हैं जब उन्हें साफ रक्खा जाये। परन्तु इन्हें स्वच्छ करने का कार्य कौन करे? अन्दर कोई म्युनिसिपल कमेटी अथवा कारपोरेशन तो है नहीं जो स्वच्छता का कार्य करती रहे। व्यायाम करो तो भी ये सब नाड़ियाँ स्वच्छ नहीं होती, दौड़ लगाने से भी नहीं होती। हमारे जिन पूर्वजों ने ध्यानावस्था में पहुँच कर इन नाड़ियों को गिना उन्होंने यह भी देखा कि एक उपाय है जिससे ये सभी नाड़ियाँ खुल जाती हैं और स्वच्छ हो जाती हैं। विधि यह है कि मनुष्य २४ घण्टे में कम से कम एक बार खूब खुल कर हँसे। प्रतिदिन यदि कोई व्यक्ति ऐसा करे तो प्रायः कोई रोग उसके निकट नहीं आयेगा। कई डाक्टर भी यहाँ बैठे होंगे। वे कहेंगे यह आनन्द स्वामी अच्छा आया, हमारा व्यापार समाप्त करेगा परन्तु घबराओ नहीं, ये लोग मेरे कहने पर भी हँसेंगे नहीं, रोते ही रहेंगे। आपका व्यापार ठप्प नहीं होगा ये ओषधियाँ ही खाते रहेंगे। अंग्रेजी में एक कहावत है—

When you weep your troubles heap,
When you smile your troubles raconcile,
When you laugh your troubles are off.

रोओ तो दुःख बढ़ते हैं उनका ढेर लग जाता है। मुस्कराओ तो कुछ कम हो जाते है और हँसो तो समाप्त हो जाते हैं।

भगवान् कृष्ण ने इसी लिए कहा—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिर्पर्यवतिष्ठते ॥

सुनो बाबा सुनो ! प्रसन्न रहोगे तो तुम्हारे कष्ट क्लेश दूर हो जायेंगे । प्रसन्न रहने वाले की बुद्धि स्थिर हो जाती है, उसका ध्यान लग जाता है ।

परन्तु प्रसन्न रहेगा कौन ! जो प्रसन्न रहना चाहता है । कुछ लोग ऐसे भी हैं जो प्रसन्न रहना ही नहीं चाहते । आज ही कुछ युवक मुझे मिले । किसी ने हँसी की बात नहीं की । प्रत्येक ने यही कहा कि यह कष्ट है, वह कष्ट है । जीवन संकट बन गया है । एक युवक ने तो यह भी कहा कि वह आत्महत्या करना चाहता था । मैंने कहा, "न भाई ! आत्महत्या न करो । यहाँ यदि दुःख है तो आगे भी तेरे लिए निवाड़ी पलङ्ग नहीं बिछे हुए, कर्म का फल तो भोगना ही पड़ेगा । यहाँ भोग अथवा आगे जाकर भोग । यहाँ यदि चैन नहीं तो आगे भी चैन मिलेगा नहीं—

अब तो घबरा के ये कहते हैं कि मर जायेंगे ।
मर कर भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे ॥

बोलो है कोई स्थान ? अतः यहीं रहो, उत्साह से, तप की भावना से । इन कष्टों को हँसते हँसते सहन करो । यही मार्ग है दूसरा कोई मार्ग नहीं ।

फिर कौन रहेगा सदा प्रसन्न ? वह जिसके हृदय में प्रभु का प्यार पूर्ण रूपेण जाग उठा है । जहाँ उसकी कामना है, उसके दर्शन की अभिलाषा है वहाँ चिन्ता का, दुःख का अन्धकार कहाँ रहेगा ?

एक बार अन्धकार चला गया भगवान् के पास । जाकर बोला, "महाराज ! ये आपने सूर्य और चन्द्रमा क्या बना दिये हैं जहाँ ये पहुँचते हैं वहीं से मुझे भागना पड़ता है । इन के कारण मेरा जीना कठिन हो गया है । आप सब का न्याय करते हैं मेरा भी न्याय कीजिये ।"

भगवान् ने कहा, "तू ठीक कहता है परन्तु न्याय एक दल की विद्यमानता में तो होता नहीं। कल सूर्य को साथ ले आना। मैं दोनों की बातें सुन कर न्याय करूँगा।"

अब अन्धकार कैसे आयेगा सूर्य के साथ। दोनों का परस्पर मेल नहीं। जहाँ प्रकाश पहुँचता है वहाँ अन्धकार रह नहीं सकता।

ईश्वर के प्रेम की ज्योति को मन में प्रकट करो दुःख और चितायें स्वयमेव दूर हो जायेंगे। प्रभु के प्यार की विद्यमानता में इनके लिए स्थान ही नहीं रहेगा।

कबिरा काजर रेख भी अब तो दई न जाय।
नैनन प्रीतम बस रहा, दूजा कहाँ समाय॥

दूसरे के लिए अब स्थान कहाँ है। प्रभु से लौ लगा कर देखो, सङ्कट और चिन्ताएँ स्वयं भाग जायेंगी। प्रभु का हाथ संसार में सब से बलवान् है—

उस को है क्या फिकर जो मालिक के साथ है ?

यह है प्रसन्न रहने की बात। प्रसन्न रहने से ध्यान की अवस्था प्राप्त होती है। वह उपासना हो सकती है जिसमें प्रभु का दर्शन होता है।

महर्षि दयानन्द ने "व्यवहार भानु" में बहुत संक्षिप्त परन्तु बहुत सुन्दर शब्दों में इस बात का वर्णन किया है। वह प्रतिदिन काम आने वाली बात है अतः इसे ध्यान से सुनिये—

"प्रतिदिन परमेश्वर का ध्यान, योगाभ्यास, बुद्धि को बढ़ाना, सत्यधर्म में अटूट श्रद्धा और अधर्म का हर प्रकार से त्याग करते रहना।"

ये हैं पाँच बातें जिन से उपासना की भावना दृढ़ होती है, और उसमें सफलता मिलती है। सब से पहले प्रतिदिन परमेश्वर का ध्यान

दूसरे योगाभ्यास, तीसरे बुद्धि को तीव्र करना, चौथे सत्यधर्म में ऐसा विश्वास जो डगमगाये नहीं और पाँचवाँ अधर्म से, पाप से सर्वदा पृथक् रहना।

इन पाँचों के पश्चात् जब मनुष्य उपासना करता है तो उसे अपने ही अन्दर वह भगवान् दिखाई देता है जिसके सम्बन्ध में किसी उपनिषद् के ऋषि ने कहा है—

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानां,
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां,
शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥

जो इस विनाश होने वाले संसार में अकेला ही ऐसा है जिस का नाश नहीं होता, जो ज्ञान वालों में सब से बड़ा ज्ञानी है जो एक होने पर भी अनेक प्रकार के कार्य करता है। उस परमेश्वर को धैर्यधारी तपस्वी अपने अन्दर बैठा हुआ देखते हैं। इन्हीं को शाश्वत शान्ति मिलती है अन्यों को नहीं।

परन्तु बातें हैं बहुत समय है थोड़ा अतः अगली बात सुनिये। प्रभु की कृपा और प्रभु का दर्शन पाने के लिए अन्तःकरण के तीन दोषों को दूर करना आवश्यक है। हमने देखा कि पहला दोष है मल। उसे दूर करने का उपाय है निष्काम सेवा। दूसरा दोष है विक्षेप उसे दूर करने का उपाय है उपासना और तीसरा दोष है आवरण। उसे दूर करने का उपाय क्या है? तो इस मार्ग पर चलने वाले कहते हैं कि उसे दूर करने का उपाय है ज्ञान। संसार का भी ज्ञान और परमात्मा का भी ज्ञान। परन्तु यह ज्ञान कब उत्पन्न होता है, मिलता कब है? जब मनुष्य में विवेक जागृत हो जाता है। विवेक का अर्थ ऐसी बुद्धि जो सत्य और असत्य, आत्मा और अनात्मा तथा जड़ और चेतन में भेद कर सके। जब तक यह विवेक उत्पन्न नहीं

होता तब तक सच्चा ज्ञान भी उत्पन्न नहीं होता।

कल मैं आपको पुरंजन राजा की कथा सुना रहा था। उस ने नौ द्वारों वाली एक नगरी को देखा उसमें एक सुन्दर स्त्री की नगरी में जा कर रहने लगा। उस स्त्री का दास बन गया। अपने आप को भूल गया। नौ द्वारों की नगरी हैं मनुष्य का शरीर। इसमें सुन्दर स्त्री है बुद्धि। गीत बुद्धि सुनती है इस का आनन्द आत्मा लेता है। अच्छे अच्छे दृश्य बुद्धि देखती है और आनन्द आत्मा लेता है। भोजन इन्द्रियों के द्वारा बुद्धि करती है, पेट आत्मा का भर जाता है। मद्य वह पीती है, पागल यह हो जाता है। सुख और दुःख को वह भोगती है इन्हें अनुभव यह करता है। अपना इसने कुछ रक्खा नहीं। इन्द्रियों के जाल में फँसा दिया अपने आपको। पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन, इन ग्यारह के जाल में फँस कर इन ग्यारह का ही दास हो गया वह। अपने आपको भूल गया।

ग्यारह और बारह की एक कथा मैंने कई बार सुनाई है। आपको भी सुनाता हूँ। बारह यात्री थे। एक नगर से दूसरे नगर को जा रहे थे। आगे बढ़े तो एक नदी आ गई। अब सब लोग घबराये कि नदी को कैसे पार करें, कोई पुल नहीं, नाव नहीं, पार जाना आवश्यक है, कैसे जायें? इन में एक स्याना भी था। उसने कहा देखो घबराओ नहीं। नदी को अवश्य पार करना है। सब लोग एक दूसरे का हाथ पकड़ लो, हम सब मिल कर पार हो जायेंगे। सब ने ऐसा ही किया। दृढ़ता से हाथ पकड़ लिए। प्रयत्न करके पार हो गये। किनारे पर पहुँचे तो स्याने व्यक्ति ने कहा, "अब गिनती कर लो कि कहीं कोई नदी में तो नहीं रह गया।" दूसरे ने कहा, "सबसे अधिक बुद्धिमान् तू ही है, तू ही गिन।" उसने गिनना आरम्भ किया, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह।" स्वयं को उसने गिना ही नहीं। चौंक कर बोला, "ये तो ग्यारह हैं, एक व्यक्ति कहाँ गया?" दूसरे ने कहा, "ठहरो, मैं गिनता हूँ।" उसने भी अपने आप

को छोड़ दिया। कहा, "ये तो ग्यारह हैं।" तब तीसरे ने गिना। उसने भी अपने आप को नहीं शेष ग्यारह को गिना। चौथे ने गिना, पाँचवें ने गिना। इसी प्रकार सभी व्यक्तियों ने गिना। किसी ने भी अपने आपको नहीं गिना। सब ने ग्यारह ही गिने और लगे रोने कि एक व्यक्ति डूब गया। वे इस प्रकार रो रहे थे कि एक और यात्री उधर से निकला। उसने पूछा, "क्या हुआ है भाई! तुम रोते क्यों हो?" उन्होंने कहा, "हम बारह थे, नदी को पार करते हुए एक व्यक्ति डूब गया। अब ग्यारह शेष रह गये हैं, इसलिए रोते हैं।" उस व्यक्ति ने एक दृष्टि में उन्हें देखा कि ये तो बारह हैं तब बोला, "देखो! यदि मैं तुम्हारे बारहवें साथी को खोज दूं तो?" वे बोले, "तब तो हम तुम्हें भगवान् मान लेंगे।" उस ने कहा, "बहुत अच्छा।" सब बैठ जाओ। मैं प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर चपत मारूंगा। जिसे पहली चपत लगे वह कहे एक, जिसे दूसरी लगे वह कहे दो, इसी प्रकार सब लोग बोलते जाओ।" वे सब बैठ गये। उस यात्री ने पहले व्यक्ति के मुख पर चपत मार कर कहा, "एक।" व्यक्ति ने कहा, "हाँ, एक।" तब उसने दूसरे ने मुँह पर चपत मार कर कहा, "दो।" दूसरे ने कहा, "हाँ, दो।" इसी प्रकार उसने तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह—सब गिन डाले। अन्तिम यात्री ने कहा, "हाँ, बारह।" और सब प्रसन्न हो गये कि उनका बारहवाँ साथी मिल गया। सब ने चपत मारने वाले को कहा, "तू तो वस्तुतः भगवान् है।"

आपको इन यात्रियों की मूर्खता पर हँसी आती है परन्तु सोच कर देखो हम स्वयं क्या कर रहे हैं। हम बारह यात्री चले थे जीवन को इस यात्रा पर पाँच कर्मेन्द्रियां पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन और बारहवाँ आत्मा। हमने आत्मा को ही भुला दिया। ग्यारह ही ग्यारह हमें दिखाई देते हैं। बारहवाँ दृष्टिगोचर नहीं होता। इन

ग्यारह के लिये हम सब कुछ करते हैं। प्रातः से सायं तक, सायं से प्रातःकाल तक परिश्रम करते हैं। आत्मा के लिये कुछ भी नहीं करते। इन ग्यारह को हम प्रत्येक प्रकार का भोजन देते हैं। आत्मा को हमने भूखा बैठा रक्खा है। आज आत्मा ही डूब गया है। अतः मनुष्य दुःखी है, अशान्त है, कहीं भी उसे शान्ति नहीं मिलती। स्मरण रक्खो जब तक मनुष्य इस आत्मा को नहीं जानेगा, जब तक उसे नहीं पहचानेगा और इसकी चिन्ता नहीं करेगा तब तक कभी कोई शान्ति मिलेगी नहीं।

आत्मानं चेद्विजानीयादयमस्मीति पूरुषः।
किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्॥

"मैं आत्मा हूँ" जो व्यक्ति ऐसा जान ले, वह फिर किस इच्छा से अपने शरीर को तपाये। किस फल की कामना से अपने आप को कष्ट दे। जो आत्मा का साक्षात् कर लेता है आत्मा को समझ लेता है और देख लेता है उसे फिर शरीर को तपाने की आवश्यकता नहीं रहती, वह पूर्ण काम हो जाता है।

परन्तु पूर्णकाम तब होता है जब आत्मा को जान ले, आत्मिक-ज्ञान प्राप्त कर ले। परन्तु आज तो आत्मा को भुला दिया है संसार ने। यह सबसे बड़ा रोग है। अतः आज से एक सौ वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द ने कहा, "संसार का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो करो परन्तु आत्मा का ज्ञान अवश्य प्राप्त करो।

इसीलिए आज से लाखोंवर्ष पूर्व महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा—

यो वा एतदक्षरं गार्ग्यविदित्वाऽस्मिल्लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्ष सहस्राणि, अनवदेवास्य तद्भवति। यो वा एतदक्षरं गार्गि! अविदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि! विदित्वा ऽस्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः।

सुनो गार्गि! सुनो गार्गि! यदि कोई व्यक्ति इस अक्षर आत्मा को, उस परम ब्रह्म परमेश्वर को जाने विना इस संसार से चला

जाता है उसने चाहे कितने ही यज्ञ किये हों, कितना भी तप किया हो और सहस्त्रों वर्ष तक कई जीवनों में तपा हो तो उसका यह सब कुछ अन्त में नाश होने वाला है। और सुनो गार्गि ! जो व्यक्ति इस अक्षर आत्मा जो जाने विना इस संसार से चला जाता है, वह अभागा है, दया का पात्र है। परन्तु गार्गि ! जो इस अक्षर परम ब्रह्म परमात्मा को जान कर इस संसार से जाता है, वह ब्राह्मण है, विद्वान् है, वही श्रेष्ठ, वही महान् एवं पूजनीय है।

तो ज्ञान का अर्थ है आत्मिक ज्ञान। इस आत्मिक ज्ञान को जो प्राप्त कर लेता है। उसके अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार का तीसरा दोष आवरण भी समाप्त हो जाता है। निष्काम सेवा से मल दोष, उपासना से विक्षेप दोष और ज्ञान से आवरण दोष दूर हो जायें तो निश्चय रूप से प्रभु की कृपा प्राप्त होती है। यह उपनिषद् के ऋषियों की घोषणा है।

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः

सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान, और सदा का ब्रह्मचर्य - इसके मार्ग पर चलने और अन्तःकरण के दोषों के दूर होने के पश्चात् कहीं बाहर या दूर नहीं अपितु इसी शरीर में वह महान् ज्योति स्वरूप दिखाई देता है।

इस के लिये वन में जाने, किसी तीर्थ पर पहुँचने अथवा किसी मन्दिर में ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं। तिलों से जैसे तेल रहता है, दही में घी रहता है। झरने में जल रहता है और लकड़ी में जैसे अग्नि रहती है वैसे ही इस आत्मा में वह प्रभु रहता है। सत्य और तप आदि मार्ग पर चलने वाले उसे प्राप्त करते हैं।

तिलेषु तैलं दध्नीव सर्पिरापः स्रोतस्वरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ, सत्ये नैनं तपसा योऽनु पश्यति॥

और इस अक्षर को जान लेने, उस का दर्शन कर लेने से क्या होता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥

खुल जाती हैं हृदय की गाँठें, दूर हो जाते हैं सब सन्देह, दुरितों का नाश हो जाता है उस महान् पर-ब्रह्म के दर्शन करने से।

बोलो ! इससे बड़ी कृपा और क्या हो सकती है। परन्तु यह कृपा होती कब है ? जब भक्ति करने वाला सत्य, तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य का सहारा लेकर, दोषों से परे हट कर शरीर के भीतर इस आत्मा को देखता है—

वेनस्तत् पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येक नोडम् ।

हृदय की गुफा में वैठा है वह। वहाँ पहुँच कर ही उसे देखा जाता है। परन्तु कैसे देखा जाता है क्या बाहर की आँखों से ? बाहर की आँखें केवल बाहर वालों को देखती हैं अन्दर वाले को अन्दर की आँख देखती है—

जाहर की आँख से न तमाशा करे कोई ।
हो देखना तो दीदये दिलवा करे कोई ॥

'दीदिये दलवा'—हृदय की आँख से वह दिखाई देता है। यह आँख जब खुलती है तब आत्मा का दर्शन होता है।

परन्तु यह आत्मा क्या है ? एक भाई ने आज पूछा इतने दिन से आप आत्मा की बात कह रहे हैं परन्तु आपने यह तो बताया ही नहीं कि आत्मा है क्या ?

यही प्रश्न कभी महाराज जनक ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा था। महर्षि के पास जाकर उन्होंने कहा, "महात्मन् ! बतलाइये कि यह व्यक्ति किस ज्योति वाला है ? किस ज्योति से कार्य लेता है, देखता है और कार्य चलाता है ?" याज्ञवल्क्य ने कहा, "यह तो

बिल्कुल बच्चों जैसी बात पूछी आपने महाराज ! प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मनुष्य सूर्य की ज्योति से देखता है, उससे अपना कार्य चलाता है।" जनक ने कहा, "और जब सूर्य न हो तब ?" याज्ञवल्क्य बोले, "तब वह चन्द्रमा की ज्योति से देखता और अपना कार्य चलाता है।" जनक ने पूछा, "और जब चान्द भी न हो तब ?" याज्ञवल्क्य बोले, "तब वह अग्नि के प्रकाश से देखता है, उससे अपना कार्य चलाता है।" जनक ने पूछा, "और जब अग्नि भी न हो तब ?"

याज्ञवल्क्य बोले, "तब वह वाणी के प्रभाव से देखता है, उस से अपना कार्य चलाता है। रात्रि हो गई सूर्य अस्त हो गया। चन्द्रमा अभी नहीं निकला। कोई दीपक नहीं। पूर्ण अन्धकार का साम्राज्य है और यात्री खो गया है एक विशाल जङ्गल में। तब वह आवाज देकर पूछता है, "कोई है मुझे मार्ग बताओ।" और दूर खड़ा कोई व्यक्ति कहता है यहाँ चले आओ यात्री ! जहाँ से में बुलाता हूँ यात्री ध्वनि का सहारा लेकर वहाँ पहुंच जाता है। तब वाणी ही उसकी ज्योति है। उसी से वह कार्य चलाता है।" जनक ने पूछा, "और जब वाणी भी न हो महाराज ! तब ?" याज्ञवल्क्य ने कहा, "तब आत्मा ही उस व्यक्ति की ज्योति है। उसी से वह अपना कार्य चलाता है।"

मैं एक बार काश्मीर में कुकुरनाग में ठहरा हुआ था। एक दिन सायंकाल घूमने गया तो दूर चला गया। देखा कि सामने एक पगडण्डी जाती है। उसके एक ओर मकान बना है। मकान के बाहर बरामदे में एक काश्मीरी युवक बैठा है। मैंने उससे पूछा, "भाई ! यह पगडण्डी किधर जाती है ?" उस ने मेरी बात का कोई उत्तर नहीं दिया मैंने तनिक समीप जाकर पूछा, "क्यों भई ! तुम तो यहाँ रहते हो यह पगडण्डी किधर जाती है ?"

वह फिर भी नहीं बोला वैसे ही बैठा रहा चुपचाप। मैंने तीसरी

वार जोर से पूछा, अरे भाई ! कुछ तो बोलो, "मैं कहता हूँ कि यह पगडण्डी किधर जाती है ?" वह फिर भी कुछ नहीं बोला। उसी समय मकान के भीतर से एक व्यक्ति बाहर आ गया बोला, "क्या बात है ?" मैंने कहा, "मैं इस युवक से कई बार पूछ चुका कि यह पगडण्डी किधर जाती है परन्तु यह उत्तर नहीं देता।" वह व्यक्ति बोला, "यह उत्तर कैसे दे यह तो गूँगा है। सुनता भी नहीं बहरा है, देखता भी नहीं, अन्धा है।" मैंने आश्चर्य से कहा, यदि यह बोलता नहीं, सुनता नहीं, देखता नहीं तो फिर अपना कार्य कैसे चलाता है।" वह बोला, "प्रातः ठीक समय पर उठता हैं, पशुओं को चराने ले जाता है। उनके साथ साथ जाता, उनके साथ साथ वापस आ जाता है। आज तक एक बार भी उसने भूल नहीं की।"

तब मुझे महाराज जनक और महर्षि याज्ञवल्क्य की यह कथा स्मरण हो आई। महर्षि याज्ञवल्क्य की यह बात भी कि जब अन्य कोई ज्योति न हो तब यह आत्मा ही मनुष्य की ज्योति है।

परन्तु जनक सरलता से तो मानने वाले नहीं थे। उन्होंने जब सुना कि जब कोई अन्य ज्योति न हो तब आत्मा ही मनुष्य की ज्योति है. तो पूछा—

कतमात्मेति

यह आत्मा क्या है ? तब याज्ञवल्क्य बोले—

योऽयं विज्ञानमयः प्राणेषु ह्यन्तर्ज्योतिः पूरुषः ।

यह जो जीता जागता, विज्ञान से भरपूर, प्राणों में संचार करता हुआ, हृदय के अन्दर ज्योति बन कर बैठा हुआ पुरुष है—यही आत्मा है।

परन्तु यह जो सारे शरीर में अपनी ज्योति पहुँचाता हुआ, प्राणों में व्याप्त, हृदय में बैठा हुआ है वह है कितना बड़ा ? बहुत छोटा है वह। वेद भगवान् के शब्दों में—

बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते ।

जीवात्मा नाम का एक जीता जागता पदार्थ है जो बाल की नोक से भी छोटा है। यही बात श्वेताश्वतरोपनिषद् का ऋषि भी कहता है—

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥

वाल के अग्रभाग को सौ भागों में विभक्त कर दिया जाये और फिर उन सौ भागों में से एक भाग के सौ भाग कर दिये जायें तो उस भाग से भी छोटा—वहुत छोटा है यह आत्मा। इसका छोटापन वर्णनातीत है। उसकी कल्पना ही की जा सकती है। इतना छोटा है यह आत्मा।

आप कहेंगे जब यह इतना छोटा है तव हृदय आकाश में उसे किस प्रकार खोजें ? परन्तु जो वस्तु जितनी छोटी होती है। उतनी ही शक्तिशाली भी होती है। एटम बम्वों और हाइड्रोजन बम्वों ने अव यह बात सिद्ध कर दी है। यह आत्मा उन परमाणुओं से भी करोड़ों गुणा छोटा है उन से भी करोड़ों गुणा शक्तिशाली है। इस महान् शक्ति को भुला कर जव तक मनुष्य संसार के ध्यान में लगा रहेगा, तव तक उसे शान्ति नहीं मिलेगी, सुख नहीं मिलेगा। जब तक सच्चा आश्रय नहीं मिलेगा तब तक प्रत्येक उन्नति व्यर्थ है, प्रत्येक सम्पत्ति निर्धनता और प्रत्येक शक्ति निर्बलता।

स्मरण रक्खो जव तक इस आत्मा को भूले रहोगे जव तक इसे भूखा रक्खोगे और जव तक केवल शरीर की भूख मिटाने के साधन जुटाते रहोगे तब तक कुछ नहीं मिलेगा। क्योंकि आत्मा को जाने विना जो कुछ भी मिलता है वह सव नाश होने वाला है।

और जव इस आत्मा को जान लोगे जव इस को समझ लोगे तव परमात्मा को पाना भी सरल हो जायेगा क्योंकि वह परमात्मा

भी इसी आत्मा के भीतर बैठा है। वैदिक सिद्धान्तानुसार, आर्य समाज के सिद्धान्तानुकूल परमात्मा सर्वव्यापक है, प्रत्येक वस्तु में विद्यमान है अतः आत्मा में भी है। यह जीवात्मा इस परमात्मा का शरीर है। जैसे इस स्थूल शरीर में सूक्ष्म शरीर रहता है, जैसे सूक्ष्म शरीर में कारण शरीर है और कारण शरीर में आत्मा निवास करता है। वैसे ही आत्मा में परमात्मा निवास करता है। परमात्मा को देखना हो तो कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं अपने अन्दर देखने से ही वह दृष्टिगोचर होता है—

तेरा प्रीतम है घट मांही बाहरु आँखें क्यों खोले।
कहत कबीर सुनो रे साधो प्रीतम मिल गये तिल ओले॥

तिल की ओट में बैठा है तेरा प्रीतम। यह तिल क्या है? किस प्रकार इसे दूर करना है? किस प्रकार प्रीतम को देखना है? यही मैं आपको कई दिन से बता रहा हूँ। जब ये मल विक्षेप और आवरण के तिल दूर हो जाते हैं तब इस शरीर में प्रभु मिल जाते हैं। कहीं आना नहीं पड़ता, जाना नहीं पड़ता।

यह उपनिषदों का सार मैंने आपके समक्ष रक्खा। उन का केवल एक सन्देश। इस सन्देश के सम्बन्ध में अभी बहुत कुछ कहा जा सकता है। उपनिषदों की सारी बातें आपके समक्ष रक्खूँ तो एक सप्ताह नहीं, एक मास नहीं, एक वर्ष नहीं—कई वर्ष भी बोलता रहूँ तो भी इन बातों का वर्णन नहीं हो सकेगा। परन्तु इतनी देर न मुझे बोलना है न आपको सुनना है अतः केवल एक सन्देश आपके सामने रक्खा। इस सन्देश के सम्बन्ध में भी केवल मोटी मोटी बातें।

परन्तु इस कथा के क्रम में मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है इसका वर्णन आपको सुनाऊँगा। यह वर्णन भी बृहदारण्यक और छान्दोग्योपनिषद् में बहुत विस्तार के साथ आता है। मैं संक्षेप में बताऊँगा।

पहली बात यह है कि मृत्यु जब निकट आ रही हो तब उपनिषद् के ऋषि के अनुसार मनुष्य यदि सूर्य को देखे तो सूर्य दिखाई अवश्य देता है परन्तु उससे निकलने वाली रङ्गारङ्ग की किरणें दिखाई नहीं देतीं, अतः प्रतिदिन सूर्य को देखो। यदि सूर्य की किरणें दिखाई दें तो ठीक परन्तु यदि किसी दिन दिखाई न दें तो समझो कि 'ओम् तत् सत्' होने वाला है।

कई डाक्टर महोदय भी यहाँ बैठे होंगे। उन से भी मैं कहता हूँ कोई रोगी आये तो उससे कहें सूर्य को देखे यदि उसे किरणें दिखाई नहीं देती तो फिर—फिर भले ही नाड़ी ठीक प्रकार चलती हो, हृदय की धड़कन ठीक हो, रक्त चाप सम हो—वह व्यक्ति मरेगा अवश्य। हमारे ऋषियों की बात कभी झूठी नहीं होती।

परन्तु यह तो है मृत्यु से पूर्व की बात, मृत्यु के समय क्या होता है ? जैसे मृत्यु का समय आता है वैसे ही—चाहे यह मृत्यु गोली लगने से हो रही हो अथवा तलवार का घाव लगने से, दीर्घ रोग के कारण हो रही हो या चोट लगने से, मस्तिष्क की नाड़ी फटने से हो रही हो अथवा हृदय की गति बन्द होने से हो—मृत्यु का समय आते ही पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँचों कर्मेन्द्रियाँ, पाँचों प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार सब के सब सूक्ष्म रूप में आत्मा के पास एकत्रित हो जाते हैं। यह सब कुछ एक क्षण में क्षण के एक छोटे भाग में होत[illegible] है। जैसे कोई राजा जा रहा हो किसी यात्रा पर तो सब म[illegible] राज्य कर्मचारी और दरबारी उनके पास एकत्रित हो जाते हैं कहते हैं कि "महाराज जा रहे हैं हम भी उनके साथ चलेंगे[illegible] प्रकार ये सब आत्मा के पास इकट्ठे हो जाते हैं और फि[illegible] राजा के आगमन से पूर्व उसके स्वागत की तैयारियाँ हो[illegible] इसी प्रकार किसी दूसरे स्थान पर इस 'आत्मा सम्राट् की तैयारियाँ भी होने लगती हैं इधर जाने की तैयारियाँ उधर स्वागत की तैयारियाँ होने लगती हैं। परन्[illegible]

है इसका निर्णय आत्मा के कर्म करते हैं। इन्हीं कर्मों के अनुसार यह भी निर्णय होता है कि अपने सूक्ष्म शरीर के साथ यह आत्मा नौ द्वारों वाली इस नगरी में किस मार्ग से बाहर जायेगा ? यदि उसने प्रथम श्रेणी का टिकट ले रक्खा है तो प्रथम श्रेणी के द्वार से बाहर जायेगा। सैकिण्ड क्लास का टिकट ले रक्खा है तो सैकिण्ड क्लास के द्वार से। तृतीय श्रेणी का टिकट ले रखा है तो तृतीय श्रेणी के द्वार से और यदि बिना टिकट तो—ढूँढ़ता फिरेगा कि किधर से बाहर जाये।

देखो ! यह बिना टिकट वाली बात नहीं करता। कम से कम तृतीय श्रेणी का टिकट तो लेता है अवश्य।

यदि आपने स्पेशल क्लास का, वातानुकूलित (Airconditioned) श्रेणी का टिकट ले रक्खा है तो फिर आत्मा विशेष श्रेणी के द्वार से बाहर जायेगा। स्पेशल क्लास का द्वार है यह ब्रह्मरन्ध्र। प्रायः यह बन्द रहता है। केवल विशेष व्यक्तियों के लिए खुलता है। दूसरे लोग कोई नाक से, कोई कान से, कोई आँख से, कोई मुँह से, कोई दूसरे द्वारों से अपने अपने कर्मानुसार बाहर चले जाते हैं।

अब सुनिये कि मृत्यु के पश्चात् क्या होता है। इस शरीर से ...कल कर आत्मा अपने सूक्ष्म शरीर के साथ कर्मानुसार चलता है। ... कहता है चन्द्रलोक में जाता है। क्या पता कहाँ जाता है ? हाँ ...वश्य है कर्मानुसार। लोकों की कोई गणना नहीं। अनन्त हैं ...र सौर मण्डल संसार के बहुत छोटे सौर मण्डलों में है। ...ौर मण्डल में घूमती है उसी प्रकार यह सौर मण्डल ...र्य मण्डल में घूमता है जिसे हिन्दी भाषा में आकाश गंगा ...र अंग्रेजी में इसे Milkey way कहा जाता है। इस महा ...ल में जो हमारा महा मण्डल है, हमारे सौर्य मण्डल से ...ए करोड़ सौर्य मण्डल हैं। प्रत्येक सौर्य मण्डल

में भी ग्रह हैं ये एक करोड़ सौर्य मण्डल इस महामण्डल में निरन्तर दौड़ रहे हैं और वैज्ञानिकों का कहना है कि कैलेफोर्निया में रक्खी दो सौ इञ्च की दूरवीक्षण से अब तक जो महामण्डल उन्होंने गिने उनकी संख्या दो अरव है। ध्यान से सुनो मैं दो अरव कह रहा हूँ। दो सौ नहीं, दो सहस्र नहीं, दो लाख या दो करोड़ नहीं अपितु दो अरव। और इन में से प्रत्येक महामण्डल में करोड़ों सौर्य मण्डल हैं। प्रत्येक सौर्य मण्डल में कितने ही ग्रह घूम रहे हैं। हे भगवान्! कितना विशाल है यह विश्व! कितने खरबों करोड़ हैं वे लोक।

आजकल कई लोग पूछते हैं क्यों जी! पृथिवी पर जनसंख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है इसका कारण क्या यह है कि बहुत अधिक लोग पुण्य कर्म करने लगे हैं? परन्तु सुनो भाई! जो लोग इस भूमि पर मनुष्य शरीर धारण करते हैं वे सब के सब इस पृथिवी से तो नहीं आते हैं? और क्या जाने यहाँ पर बुरे कर्म करने वाले कहाँ-कहाँ जाते हैं। इतने लोक हैं ये अरबों खरबों, सब के मध्य में आदान प्रदान होता रहता है।

परन्तु जो यहाँ से गया, किसी न किसी लोक में पहुँचा वह। उसके पश्चात् कहाँ जायेगा वह और वहाँ पहुँच कर उसकी क्या दशा होगी इसका निर्णय स्वयं उसके कर्म करते हैं। इसलिए उपनिषद् के ऋषि ने कहा—

क्रतुमयः पुरुषः

मनुष्य अपने बनाये हुए संसार में उत्पन्न होता है जैसा विचार उसका हो, जैसा सङ्कल्प उसका हो, वैसा ही उसका संसार बन जाता है। इस कथा के आरम्भ में ही यह बात मैंने आप से कही थी कि दृढ़ सङ्कल्प वाले, उत्तम विचारों वाले बनो। तुम्हारा संसार बनाने वाला कोई दूसरा नहीं तुम स्वयं हो। अपनी मानसिक [illegible] को दृढ़ बनाओ [illegible]

मकान से बाहर आये मोटर में बैठे। एक कुत्ता मकान से
मोटर तक आया। मोटर चली गई तो कुत्ता फिर द्वार पर
बैठ गया। पार्वती ने योगबल से देखा कि इस कुत्ते के भीतर
की आत्मा बैठी है। साधु के रूप में उसके पास जाकर माँ
कहा, "अरे अभागे! अब किस शरीर में आ गया है तू?
साथ। स्वर्ग के द्वार अब भी तेरे लिए खुल सकते हैं।" कुत्ते
हुई वृद्ध की आत्मा ने कहा, "आप ठीक कहते हो महात्म
परन्तु मेरा पुत्र है मूर्ख उसकी पत्नी उससे भी अधिक मूर्खा
भरा घर छोड़ कर चले गये हैं। नहीं जानते कि आजकल
बेईमान हो गये हैं। मैं रक्षा न करूँ तो सारा घर लुट
अभी तो मैं नहीं जा सकता। आप कुछ देर पश्चात् आना,
कोई प्रबन्ध हो जायेगा फिर मैं चलूँगा।" पार्वती पुनः
गई। एक वर्ष पश्चात् पुनः वहाँ पहुँची तो देखा द्वार पर
नहीं। शङ्कर भगवान् की शक्ति से देखा तो ज्ञात हुआ कि
आत्मा कुत्ते का शरीर छोड़ चुकी है। उस कृमि में है जो
निकलने वाली गन्दी नाली में बैठा है। आधा गन्दे पानी में है
उससे बाहर। पार्वती ने साधु के रूप में उसके पास जाकर
"बाबा! अब तू अपना हाल देख। अब तो तू चला चल।
जोर से टीस करते हुए कहा, "अरे ओ महात्मन्! तुझे क्या
मिला हूँ स्वर्ग जाने के लिए। जा किसी और को ले जा। मैं
जाता तेरे स्वर्ग में। मेरा स्वर्ग यहीं है जहाँ मैं अपने बेटे को
हूँ, अपने पौत्र को देखता हूँ। उसके घर की गन्दगी भी मेरे
अमृत जैसी है।" तब माँ पार्वती क्या करतीं। वापस आ गईं
पर। भगवान् शिव ने उन्हें चिन्तित देखा, चिन्ता का कारण
तो बोले, "मैंने तुम्हें पहले ही कहा था इस झंझट में न पड़ो
मोह बहुत बुरी वस्तु है। इसमें फँस कर मनुष्य नीचे गिरता है

लगा कि दो वर्ष हुए उसका देहान्त हो गया। उसका पुत्र रहता मुक गली में। वृद्ध अब नहीं रहा। पार्वती उसी साधु के रूप में, मकान पर पहुँची। देखा मकान के बाहर एक ताँगा खड़ा है। आगे एक घोड़ा है। तभी मकान से एक युवक निकला, उसकी पत्नी निकली, उसका छोटा सा पुत्र भी निकला। सब तांगे में हो गये। युवक ने घोड़े की लगाम हाथ में ली। दायें हाथ से क पकड़ा और तड़ातड़ लगा दिये घोड़े की पीठ पर। घोड़ा तो पार्वती ने भगवान् शंकर की शक्ति से पहचाना कि इस में उसी बूढ़े को आत्मा है। घोड़ा तीव्र गति से दौड़ रहा था। आरा बाग में पहुँच कर युवक, उसकी धर्म पत्नी और पुत्र से उतर गये। घोड़ा पसीने से तर हो गया।

र व[illegible] उसके पास पहुँच कर कहा, "बाबा! यह तुम कहाँ गये? इस प्रकार मार खाते हो बोझा ढोते हो। इस प्रकार ा, पसीना हुए जाते हो, चलो मेरे साथ में मैं तुम्हें स्वर्ग ले" घोड़े के भीतर बैठी हुई बूढ़ी आत्मा ने कहा, "आप बहुत हैं महात्मन्! परन्तु आप शायद जानते नहीं कि यह युवक टा है, वह स्त्री मेरी पुत्र वधू है, वधू बच्चा मेरा पोता है। इन्होंने क्रय कर लिया है। अब यदि में चला जाऊँ तो कोई घोड़ा इन्हें क्रय करना पड़ेगा। एक तो धन खर्च होगा फिर घोड़े का विश्वास क्या है? मेरे वे अपने हैं। मैं इस ध्यान से कि किसी को धक्का न लगे। ठोकर न लगे, टक्कर न हो दूसरा घोड़ा यह सब कुछ क्यों सोचेगा? आप कुछ देर ठहरो, को मोटर क्रय कर लेने दो।" पार्वती पुनः वापिस आ गईं। पश्चात् उसी मकान पर पहुँचीं उसे वेष में। देखा तो मकान र खड़ी है। ताँगा और घोड़ा कहीं दिखाई नहीं देते। तभी क, उसकी पत्नी और उसका पुत्र जो बड़ा हो गया था

"तो आ मेरे साथ चल, मैं तुझे स्वर्ग में ले चलूँगा।" वृद्ध ने कहा, "स्वर्ग ! स्वर्ग में क्या होता है ?" साधु ने कहा सुख ही सुख। बहुत गर्मी नहीं, बहुत सर्दी नहीं, सदा सुन्दर ऋतु। हर समय गाती हुई वायु में खिलते हुए पुष्प, चहचहाते हुए पक्षी, रङ्गों भरा आकाश। जो वस्तु भी चाहो उसी समय मिल जाती है।" वृद्ध ने कहा, "यह तो बहुत उत्तम है। और कार्य क्या करना पड़ता है ?" साधु ने कहा, "कुछ नहीं, चाहो तो भगवान् का ध्यान करो न चाहो तो न करो।" वृद्ध ने कहा, "यह तो और भी उत्तम है, तब तो चलो। मैं अपनी पत्नी, बच्चे, धन सम्पत्ति सब को ले चलूँगा।" साधु ने कहा, "पत्नी, बच्चे, मकान और सम्पत्ति नहीं, केवल तुम्हारे लिए आज्ञा है, चलना है तो चलो। बूढ़े ने सोचते हुए कहा, "आप कहते तो ठीक हैं, परन्तु मेरे बड़े पुत्र की कहीं नौकरी लग जाये, वह कुछ कमाने लग जाये तो चला चलूँगा कुछ देर ठहर कर भी तो जा सकता हूँ ?" साधु बोला, "हाँ जब भी चाहो तभी चलो, तुम्हारे लिए स्वर्ग जाने की आज्ञा हो चुकी है।' साधु के रूप में पार्वती ने यह कहा और वापस आ गई। एक वर्ष व्यतीत हो गया तो फिर उसी रूप में फिर उसी स्थान पर पहुँची, बोली, "कहो बाबा ! तुम्हारे पुत्र की नौकरी लग गई ?" बूढ़े ने पुराने साधु को देखा तो हाथ जोड़ कर कहा, "आपने बहुत कृपा की। आपकी कृपा से इसकी नौकरी भी लग गई, विवाह भी हो गया।" साधु बोला, "तो आओ अब स्वर्ग चलें।" वृद्ध ने कहा "चलूँ तो सही परन्तु मैं हूँ गृहस्थी ! बहू के बच्चा होने वाला है, पोते का मुख देख लूँ। उसकी कुछ खुशी देख लूँ तो चलूँगा। जाना मुझे है जाऊँगा अवश्य। मैं इस जीवन से दुःखी हो गया हूँ।" पार्वती फिर वापिस आ गई दूसरे वर्ष नहीं गई, तीसरे और चौथे वर्ष भी नहीं गई। पाँचवें वर्ष पहुँची उसी दुकान पर, उसी साधु के रूप में, देखा तो वहाँ बूढ़ा नहीं था। पूछने पर

न जाओ। धन कमाओ, उसमें डूब न जाओ। सन्तान प्राप्त करो परन्तु उसके मोह में अपने आत्मा को भूल न जाओ। अपने प्रभु को भूल न जाओ। कमल की भाँति रहो संसार की इस झील में। झील का पानी ज्यूँ ज्यूँ ऊपर होता है कमल भी ऊपर होता जाता है। पानी के मोह में गीला नहीं होता वह, फँसता नहीं वह। और यह मोह! हे मेरे भगवान् कैसी कैसी खराबियाँ करता है यह।

एक कथा बहुत बार सुनाई है, बहुत लोगों को। शायद आपने भी पहले सुनी हो। समझाने के लिए कहानी है, वास्तविकता न समझना। शिव जी एक बार कैलाश पर बैठे थे तो माँ पार्वती ने कहा, "महाराज! आप यहाँ बैठे हुए भी योगबल से प्रत्येक को देखते हैं ऐसा कीजिये कि मैं देखने लगूँ।" भगवान् शिव ने कहा, "देवी! संसार में बहुत विचित्र प्रकार के मनुष्य रहते हैं। उन्हें देख कर तेरा मन दुःखी होगा। न देख तो अच्छा होगा।" पार्वती बोलीं, "नहीं, कैलाशपते! मुझे तो देखना है।" शंकर बोले, "अच्छी बात है, देखना चाहो तो देखो मैंने तुम्हें देखने की शक्ति दी अब प्रत्येक वस्तु दिखाई देगी।" और पार्वती ने देखा इस रङ्ग बिरंगे संसार को। इस प्रकार देखा कि जैसे वह प्रत्येक वस्तु के ऊपर उड़ी जाती है। उड़ते-उड़ते दिल्ली के चाँदनी चौक पर पहुँची तो देखा कि एक बूढ़ा व्यक्ति एक दुकान में बैठा कह रहा है, हे "शंकर प्रभो! इस जीवन से तो मृत्यु अच्छी।" पार्वती ने अपना शंकर का नाम सुना तो वहीं रुक गई। देखा कि गर्मी के दिन हैं, दोपहर का समय। दूकान का स्वामी अन्दर वाले कमरे में आराम कर रहा है और यह बूढ़ा बाहर गर्मी में बैठा हिसाब कर रहा है। पार्वती ने भगवान् शंकर की शक्ति से देखा कि वह एक अवकाश प्राप्त क्लर्क है। पहले किसी राज्य कार्यालय में सेवा करता था। एक मकान बनवा लिया। बाल बच्चे भी हो गये। परन्तु घर के मोह को त्याग नहीं सका। इस

दुकानदार के पास सेवा करने लगा। अब यह दिन भर बैठा हिसाब करता है। रुपया दुकानदार को मिलता है। हिसाब उसको मिलता है बूढ़ा हो गया है बहुत। ठीक प्रकार से दिखाई भी नहीं देता। कई बार त्रुटियां करता है, त्रुटि न हो जाये इसलिए अधिक परिश्रम करता है। स्वेद बह रहा है और भगवान् शंकर की प्रार्थना कर रहा है कि इस जीवन से मृत्यु आ जाय तो सुन्दर। पार्वती ने उसे देखा। उसे तरस आया। कैलाश में उसने शंकर से कहा, "प्रभो! उस व्यक्ति को देखते हैं, वह आपका भक्त है बहुत दुःखी है इसके कष्टों को दूर क्यों नहीं कर देते।" भगवान् शिव हँसते हुए बोले, "देवी! तू तो बिल्कुल भोली है। मेरा नाम सुन कर धोखे में आ गई। वह मेरा भक्त नहीं अपनी सन्तान का भक्त है उसके लिए कष्ट भोग रहा है।" पार्वती ने कहा "फिर भी महाराज! आप कृपा कीजिए, उसका कष्ट दूर कर दीजिए।" शिवशंकर ने मुस्करा कर कहा, "कृपा तो तुम ही करो देवी! उसके पास जाओ यदि वह माने तो उसे स्वर्ग में ले आओ परन्तु उसे विवश मत करना। जैसा वह चाहे वैसा ही करना।"

पार्वती बोली, "बहुत अच्छा महाराज! मैं अभी जाकर उसे कहती हूँ। भला स्वर्ग आने की बात वह क्यों नहीं मानेगा? वह तो बहुत दुःखी है।" शंकर ने कहा, "अवश्य जाओ। साधु के वेश में जाना।" पार्वती वृद्ध साधु बन गई। श्वेत दाढ़ी, श्वेत जटायें, शरीर पर भगवे वस्त्र, हाथ में एक सुन्दर कमण्डल। इस साधु ने चाँदनी चौक की उस दुकान पर जाकर इस बूढ़े को देखा। अब भी वह पसीना पोंछ रहा था। अभी भी कह रहा था, "इस जीवन से तो मृत्यु अच्छी।" साधु के रूप में पार्वती ने आगे बढ़ कर कहा, "बाबा! तुम मृत्यु को बुलाते हो, बहुत दुःखी प्रतीत होते हो।" बूढ़े ने कहा, "हां महात्मा जी! बहुत दुःखी हूँ।" साधु ने कहा,

सौ रुपये का नोट, दस रुपसे का, पाँच का, सहस्र रुपये का—बम्बई में चलते हैं, हजार हजार के नोट, और कुछ नहीं तो एक रुपये का नोट ही ले आते। परन्तु कल तो यह कुछ बोला नहीं आज माँगने लग गया है। परन्तु चिन्ता मत करो। मुझे नोट नहीं चाहिए। एक रुपये का, पाँच रुपये का, सौ का, सहस्र का भी नहीं चाहिये। बहुत देख लिए मैंने नोट, छोड़ दिया इनको। तब आप सोचेंगे, शायद इसे मकान चाहिए। दिल्ली में आता है। कभी एक मकान में ठहरता है, कभी दूसरे में। अपने लिए मकान चाहता है। नहीं मकान नहीं चाहिए मुझे। ये जितने भी मकान हैं। सब मेरे हैं। कोई और मकान मुझे चाहिए नहीं। आप सोचेंगे शायद कोठी चाहिए उसे: नहीं मुझे कोठी भी नहीं चाहिए। रिक्त भूमि भी नहीं चाहिए। मोटर भी नहीं चाहिए, बहुत देखी हैं मैंने मोटरें। देखा कि उसमें सार नहीं। सोना नहीं चाहिए, चाँदी नहीं चाहिए, कोई कपड़ा नहीं अन्न नहीं, फल नहीं, दिल्ली की सरकारी डेरी से मिलने वाला बन्द बोतल का दूध नहीं—आप कहेंगे फिर तू मांगता क्या है। लो बतलाता हूँ मैं क्या माँगता हूँ। यह झोली फैलाता हूँ आपके समक्ष जो माँगता हूँ वह दे देना, कृपणता न करना।

(उनकी वाणी में उस समय विशेष वेदना थी। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वस्तुतः कोई फकीर मस्ती भरी वाणी में भीख माँगता हो। अपनी झोली उन्होंने फैला दी। कुछ देर शान्ति रही, चहुँ ओर सन्नाटा छा गया। तभी उनकी दर्द भरी, मस्ती भरी, भीख माँगती हुई ध्वनि गूंज उठी—)

जो जो चिन्ता आपके मन में आपको कष्ट दे रही है, जो आपत्तियाँ और विपत्तियाँ आपको सता रही हैं, जो रुकावटें आपके जीवन को दुःखी बना देती हैं—लाओ वे सब मेरी झोली में डाल

दो—डाल दो, शाबास—डालते जाम्रो। रुको मत दे दो मुझे अपने सारे कष्ट, अपने सारे क्लेश, अपने सारे दुःख, सारी चिन्ताएँ। दे दो, दे दो, दे दो।

(और फिर वे चुप हो गये। आँखें बन्द, होंठ हिलते हुए। मुख मण्डल शान्त। उनके सामने बैठे हुए कितने ही लोगों की आंखों से आँसू बह निकले। एक युवती अपनी सिसकी रोक न सकी। धीरे से बोली आह! मां! परन्तु पूज्य श्री आनन्द स्वामी जी महाराज की गम्भीर ध्वनि गूँज उठी—)

देव! मुझे ही सब दुःख दे दे।
जग जन सारे सुख पायें॥
औरों के जो कलुष भोग हों।
इस जन के ऊपर आयें॥

॥ समाप्त ॥